शरच्चन्द्र

[चिन्तन व कला]

डा० इन्द्रनाथ मदान, एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी

जलन्धर

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

जलन्धर और इलाहाबाद

प्रकाशक—
इंद्रचंद्र नारंग
हिन्दी-भवन
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद ३

लेखक की अन्य पुस्तकें—

१. हिन्दी कलाकार (आलोचना)
२. काव्यकार (आलोचना)
३. प्रेमचन्द : एक विवेचन ।
४. हिन्दी काव्य की विवेचना ।
५. आधुनिक हिन्दी साहित्य (अंग्रेज़ी)
६. प्रेमचन्द (अंग्रेज़ी)
७. शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय ।

मूल्य २॥)

पहला संस्करण—मार्च, १९५४

मुद्रक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी भवन मुद्रणालय
३१२ रानी मंडी
इलाहाबाद ३

आमुख

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय महानतम भारतीय उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में मध्यवर्गीय समाज को संघर्ष एवं विघटन की अवस्था में मूर्त किया है। उन्होंने उन समस्याओं व मूल्यों का व्यापक चित्र अंकित किया है जो मध्यवर्गीय समाज को शासित करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनकी सभी कृतियों को परखने तथा सामाजिक वातावरण को दृष्टि में रख कर उनकी कला व चिन्तन का विवेचन करने का प्रयास किया गया है। ऐसा अनिवार्य है क्योंकि कोई भी लेखक अपने युग की परिस्थितियों की ओर से आँखें मूँद कर साहित्य-सृष्टि नहीं कर सकता। वह अनजान में ही उन परिस्थितियों के प्रति एक दृष्टिकोण बना लेता है और उसे अपनी रचनाओं में मुखरित करता है। शरत् मध्यवर्गीय साहित्य के सृजनात्मक काल में अवतीर्ण हुए हैं और अपने इस वर्ग के मूल्यों को अंकित करते हैं जो एक नवीन समाज-व्यवस्था की प्रतिष्ठा करने के लिए छटपटाता रहा है। मध्यवर्गीय लोगों के जीवन का चित्रण करने में उन्होंने सुविस्तृत कल्पना तथा अतिशय सृजनात्मक शक्ति का परिचय दिया है। 'मध्यवर्ग' व 'ह्रासोन्मुख' विशेषण जो प्रस्तुत पुस्तक में बार-बार प्रयुक्त किए गए हैं असंगत नहीं समझे जाने चाहिए। उनका प्रयोग परिभाषा के तौर पर किया गया है। शरच्चन्द्र वर्त्तमान संस्कृति के अभिन्न अंग हैं; वर्त्तमान संस्कृति मध्यवर्गीय संस्कृति है। वह अपने वर्ग की परिधि के इतने भीतर रहते हैं कि उससे बाहर निकल कर उस वर्ग को समग्र रूप में नहीं देख सकते। यह उन्हें अपने वर्ग की विशेषताओं को और भी ईमानदारी से चित्रित करने में समर्थ बनाता है। अतः वह मध्यवर्ग के महानतम कलाकार एवं प्रतिभासम्पन्न लेखक

हैं। वह प्रतिगामी तथा प्रतिक्रियावादी लेखकों के विपरीत प्रगतिशील मध्यवर्गीय लेखकों में से हैं। वह भारतीय संस्कृति की विशिष्ट परम्परा, करुणा प्रधान एवं प्रगतिशील जीवन-दर्शन की परम्परा के अनुयायी हैं। करुणा की भावना कभी-कभी निराशा में और निराशा की भावना विषाद तक में परिणत हो जाती है। ये सभी भाव उनके उपन्यासों व कहानियों में सचाई के साथ अभिव्यक्त किए गए हैं। ऐसा होने पर भी न केवल भारतीय साहित्य में वरन् विश्व-साहित्य में भी उन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अपनी त्रुटियों व बाधाओं का पूरा ज्ञान है। प्रथम, मैंने शरच्चन्द्र की बँगला में रचित मूल पुस्तकों का अध्ययन नहीं किया, वरन् मैंने अपनी आलोचना का आधार उनके हिन्दी रूपान्तरों को बनाया है। मैंने तुलनात्मक दृष्टि से देखा है कि हिन्दी के अनुवाद यथार्थ एवं प्रामाणिक हैं। अतः मैंने महानतम भारतीय उपन्यासकार के चिन्तन व कला की विवेचना करने का प्रयास किया है, यद्यपि मैं उनकी भाषा व शैली पर एक अध्याय जोड़ने की ओर प्रवृत्त नहीं हुआ। इस अभाव के लिये क्षमा चाहता हूँ। अंत में मैं अपनी शिष्या सुषमा एम. ए. का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी मूल पुस्तक का हिन्दी में रूपान्तर किया है और अपने साहित्यानुराग का परिचय दिया है। यदि इस पुस्तक में कोई गुण हैं तो वे रूपान्तर के हैं और दोष मूल के हैं। श्री इन्द्रचन्द्र के प्रति मैं धन्यवाद प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग दिया है।

वसंत पंचमी
फरवरी ८, १९५४

इन्द्रनाथ मदान

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूमिका

प्रत्येक महान लेखक, चाहे वह कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो, अपने सामाजिक परिवेश की उपज होता है और वह मुख्यतः अपने ही युग के लिए साहित्य-रचना करता है। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय इसके अपवाद नहीं हैं। वह श्रेष्ठतम भारतीय उपन्यासकार हैं जो अपनी कृतियों में आधुनिक मध्यवर्गीय समाज के एक भाग को संघर्ष और ह्रास की अवस्था में प्रतिबिम्बित करते हैं। जो उपन्यास मध्यवर्गीय साहित्य की अधिकतम प्रतिनिधि एवं आदर्शभूत रचना है वह इस परिवेश के साथ द्वन्द्व में पड़े व्यक्ति के संघर्ष से सम्बन्धित है, जिसमें मनुष्य तथा उसके सामाजिक घेरे के बीच संतुलन का अभाव है, जहाँ वह मानव के साथ अथवा प्रकृति के साथ संग्राम कर रहा है। उपन्यास एक नवीन कला-रूप है जो मध्यवर्गीय समाज के जीवन को सचाई के साथ प्रतिबिम्बित करता है, और भारत में मध्यवर्ग के उत्थान से पूर्व एक प्रारंभिक रूप के सिवाय इसका अस्तित्व नहीं था। इसने मध्यवर्ग के सदस्यों के सम्मुख आने वाले संघर्ष और समस्याओं को प्रतिबिम्बित करने के उपयोगी कार्य का निर्वाह किया है और उनकी सामाजिक चेतना को व्यापक तथा गहरा बना दिया है। शरच्चन्द्र की कला और चिन्तन की व्याख्या करने के लिए कुछ सीमा तक उस प्रयास पर विचार करना आवश्यक है जो इस दिशा में उनके पूर्ववर्ती और समकालीन लेखकों द्वारा पहले से ही किया जा चुका है, जिन्होंने

भारतीय मध्यवर्ग के जीवन में होने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न किया है । एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण आवश्यक है, क्योंकि किसी उपन्यासकार के नायकों अथवा पात्रों की रचना कोरी कल्पना द्वारा ही नहीं होती, प्रत्युत उनकी सूझ उसे सदैव उसी जगत से मिलती है जिसमें वह जीवन-यापन करता है। अतः मध्यवर्गीय घेरे में एक अल्प विचरण उन सभी मूल्यों को समझने के लिए उपादेय सामग्री उपस्थित करता है जिन्हें शरत् ने अपने उपन्यासों व कहानियों में अभिव्यक्त किया है।

आदि भारतीय मध्यवर्गीय लोग समाज-सुधारकों का एक समुदाय थे जिनका विचार था, कि उनका प्रधान शत्रु विदेशी शासन नहीं, अपितु जनता का पिछड़ा हुआ होना, देश में नवीन विकास का अभाव, अज्ञान की शक्तियों और शासन-पद्धति की न्यूनताएँ थीं । उन्होंने उस समय भारतीय जीवन की सर्वाधिक प्रभावशाली शक्ति का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने समाज-सुधार, उद्‌बोधन, शिक्षा और भारतीय मध्यवर्गीय समाज में जो कुछ पिछड़ा हुआ एवं लकीर का फकीर था, उस सबके विरुद्ध नवीनता के लिए कार्य जारी रखा। कालान्तर में आदि मध्यवर्ग के सुधारवादी समुदाय ने, जो पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रँगा था, एक प्रगतिशील कर्त्तव्य का पालन करना बन्द कर दिया और उनके बीच एक अनिवार्य द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ । इसका परिणाम हुआ इस समुदाय का खण्डन और एक नवीन नेतृत्व की माँग। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३८-१८९४) नए युग की प्रतिनिधि प्रतिभा थे। वह एक महान लेखक के स्वप्न को लिये जनता के राष्ट्रीय जीवन की ओर मुड़े। वेग से चल रही आँधी द्वारा भारत की जड़ें हिल

चुकी थीं । प्राचीन समाज-व्यवस्था के भावी अवसान ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों के बीच में होने वाले सामाजिक परिवर्तन के इस काल में असंतुष्ट निम्न मध्य वर्ग और शिक्षित युवक-वर्ग में अशान्ति तथा असन्तोष की गतिशील शक्तियों को जन्म दिया। नए नेताओं के सम्मुख न कोई वर्तमान था और न ही भविष्य। उन्होंने आदि मध्यवर्ग (१८००-१८३०) की पश्चिमीकरण की प्रवृत्तियों पर आक्रमण किया जिसके लिए वे प्रगतिशील थे । उन्होंने सामाजिक रूढ़िवाद और प्राचीन भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक विशिष्टता के आधार पर राष्ट्रीय आंदोलन का निर्माण करना चाहा। बंकिमचन्द्र ने अपने समाज के गौरवशाली अतीत को निहारा और अपनी मातृभूमि के पुनर्जीवन के लिए राष्ट्रीय गान को मुक्त-कंठ से गाया। यह युग राजनीतिक क्रांति और सामाजिक प्रतिक्रिया के संगम का प्रतीक था । बंकिम सामाजिक प्रतिक्रिया के साथ राष्ट्रीयता के मेल का प्रतिनिधित्व करते हैं । उनके उपन्यास इस विश्वास की अभिव्यक्ति हैं कि भारतीय स्वातंत्र्य का मार्ग देश के कीर्तियुक्त अतीत के पुनरुद्धार में है । इसलिए उनकी कृतियों में आदि मध्यवर्ग के अराष्ट्रीयकरण के विरुद्ध विद्रोह का समावेश है ।

बंकिमचंद्र ने एक ऐसे लोक की रचना की है जिसमें नर-नारियाँ सदा श्रेष्ठ की अभिलाषा करती हैं। इनके लिए कदाचित् ही कोई असफलता रही हो ; असफलता सफलता का विलम्ब-मात्र है । उनके पात्र अवसर की बाट नहीं जोहते; वे अपने लिए स्वयं ही अवसर उत्पन्न कर लेते हैं । अनास्था अथवा निराशा का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं । सामाजिक अशान्ति और सामाजिक सुधार के युग में

ऐसा होना अनिवार्य है। अस्वस्थता और नैराश्य की भावना, जो परवर्ती उपन्यासकारों की रचनाओं की विशेषताएँ हैं, उनकी कृतियों में स्पष्ट रूप से अनुपस्थित हैं। वह स्वस्थ एवं शक्तिशाली चिन्तन को व्यक्त करते हैं जो इस युग के समाज-सुधारकों का विशिष्ट गुण है। इस प्रवृत्ति को उन्होंने आदि मध्यवर्ग से ग्रहण किया है, जिसने मध्यवर्गीय समाज के विकास और रूप-निर्माण में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वह जो कुछ अपने चहुँओर हो रहा था इस सब के प्रति उत्कट रूप से सजग और शिक्षित मध्य वर्ग की प्रगति एवं हित में सहायक वस्तुओं के प्रति उत्साही हैं। वह मानवीय मूर्खताओं तथा दुर्बलताओं की उधेड़-बुन में लीन निराशावादी नहीं हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि दुराचार के ऊपर सदाचार की विजय होगी, सच्चा प्रेम अपना पथ ढूँढ़ निकालेगा, पापियों को दण्ड मिलेगा, त्याग से मानवीय आनन्द प्राप्त होगा। वह एक ऐसे समय साहित्यिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुए जब आदि मध्यवर्ग की नई चेतना का प्रथम विस्फोट लगभग समाप्त हो चुका था। तूफ़ान अपने पीछे अनिश्चयों, द्वन्द्वों और संशयों को छोड़ कर शान्त हो चुका था। बंकिम ने इनमें से एक नई व्यवस्था, नवीन समन्वय की सृष्टि करने का प्रयास किया। उन्होंने तत्कालीन संघर्ष और अव्यवस्था के स्थान पर एक श्रेष्ठतर सामाजिक व्यवस्था की नई नींव डालने में अपनी प्रतिभा और कला को लगा दिया। जो कुछ समाज के मूलाधार को अव्यवस्थित करने वाला हो, उसे उन्होंने घृणा की दृष्टि से देखा। इसी कारण वह विधवा-विवाह के पक्ष में नहीं थे, यद्यपि युवती विधवाओं के प्रति उनके मन में सच्ची प्रतिष्ठा तथा सहानुभूति थी। प्रेम के चित्रण में इन्होंने विवाह के आध्यात्मिक रूप को आदर्श

बनाया। प्रेम भौतिक कामनाओं से सदैव ऊपर उठा होना चाहिए। इसकी परिणति प्रायः विवाह में होती थी, चाहे प्राक्-विवाह काल में यह विद्यमान था। नायकों और नायिकाओं के चित्रण में वह साहसी तथा आत्म-विश्वासी पुरुषों और नारियों का अतिशय वर्णन करते थे जो चिन्तन-प्रधान जीवन की अपेक्षा क्रियात्मक जीवन में विश्वास रखते थे। प्रमुख पात्रों की यही धारणा युग की चेतना के पूर्णरूपेण अनुरूप थी। इन पात्रों के जीवन द्वारा उन्होंने सामाजिक पुनर्जीवन और सामाजिक मुक्ति का निश्चित संदेश दिया। परंपरा को वे पुनीत मानते थे, क्योंकि यह समय की परीक्षा के सम्मुख स्थिर रही। इसलिए वह न केवल एक सोद्देश्य लेखक थे, प्रत्युत अपने सामाजिक समुदाय के हित का समर्थन करने वाले पक्षवादी और प्रचारवादी भी थे। स्थिर एवं कट्टर विश्वास के युग में ऐसा अनिवार्य था; परंतु मध्यवर्गीय समाज की देह में विद्यमान नाश के कीटाणु वर्तमान शताब्दी के आरंभ में बढ़ने तथा विकसित होने लगे। अवरुद्ध विकास के कुछ समय पीछे समाज की मध्यवर्गीय व्यवस्था से विघटन और क्षय के चिह्न प्रकट होने लगे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर, उपन्यास के क्षेत्र में जिनका आविर्भाव सौभाग्य से यथासमय था, उच्च-मध्य वर्ग से सम्बन्धित थे। बंकिमचंद्र की मृत्यु के पश्चात्, जिन्होंने ऐतिहासिक यथार्थता द्वारा मध्यवर्गीय जीवन के मूल्यों की व्याख्या की, उपन्यास से क्षय तथा अवसान के लक्षण दिखाई देने लगे। यद्यपि सामाजिक उद्देश्य से रचे गए उपन्यास के सम्मुख उज्ज्वल और आशाजनक भविष्य था, तथापि शैली और विषय का मौलिक परिवर्तन ही उसे पुनर्जीवित कर सकता था।

वर्तमान शताब्दी के आरंभ में रवीन्द्र ने उपन्यास के नाते अपनी परोक्ष क्षमता को अनुभव किया और शिक्षित वर्ग की कामनाओं तथा अभिलाषाओं की व्याख्या की, जो सामाजिक मूल्यों के एक नवीन रूप की माँग करता था। गोरा (१६१०) ग के संघर्ष का प्रतीक है। इस उपन्यास में एक नवीन शक्ति एवं जीवन का स्पंदन है। इसमें धार्मिक सम्प्रदायों के तर्क-वितर्क, सामाजिक परम्पराएँ, राष्ट्रीयता और देश-भक्ति प्रचुरता से मिलते हैं। वाद-विवाद को तीक्ष्ण बुद्धि और तीव्र भावुकता के उत्कृष्ट मिश्रण द्वारा निभाया गया है। उपन्यास का नायक गोरा स्वतंत्रता के लिए उत्कण्ठित और अपनी सामाजिक तथा राजनीतिक दासता के विरुद्ध संग्राम कर रही भारत की आत्मा का प्रतीक है। वह निम्न-मध्य-वर्ग से सम्बन्धित है जो राष्ट्रीय आंदोलन (१६०५-१६१०) के प्रथम चरण के समय से राजनीतिक रूप से जाग्रत हो गया था। ज्योंही नेतागिरी के लिए उसकी अभिलाषाओं का बुलबुला उसके क्षुद्र जन्म के अन्वेषण द्वारा मिट जाता है, वह अपने व्यक्तिगत जीवन में लीन हो जाता है, जहाँ प्रेम का एकछत्र राज है और वह सामाजिक रूढ़ियों के पाश से मुक्त है। उसका काल्पनिक जीवन मध्यवर्गीय समाज के क्षय अथवा ह्रास का प्रतीक है। परस्पर-विरोधी विचारों की रगड़ ने उसमें तथा अन्य पात्रों में प्रेम की चिनगारी छोड़ दी है। इसलिए गोरा प्रेम के राज्य में संतोष की खोज करता है जो मध्यवर्गीय नायक की एक-मात्र सांत्वना एवं शरण है। यह उपन्यास सांस्कृतिक मंथन और समन्वय के युग में शिक्षित वर्ग के विशिष्ट दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। 'गोरा' के बाद रवीन्द्र के उपन्यास एक भिन्न दिशा लेते और विकास के एक नवीन रूप को धारण करते

हैं, जिसमें जीवन के व्यापक चित्र का स्थान सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं के अत्यधिक अमूर्त वर्णन ने ले लिया है। पात्रों का सम्बन्ध सामान्य जगत से नहीं हैं, वे समाज से दूर एकान्त में निवास करते हैं। मध्यवर्ग का सामाजिक धरती से क्रमशः मूलोच्छेदन हो रहा है। निखिलेश, संद्वीप, सचिश, मधुसूदन, दामिनी, अनीत, इला ऐसे प्राणी हैं जिनकी समस्याएँ उनके व्यक्तिगत जीवन को पूर्णरूपेण रिक्त कर देती हैं। वे ऐसे चित्र हैं जिनकी कल्पना एक बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है जिसने समाज से दूर एक काव्य-जगत में विश्राम लिया हो। इस बौद्धिक किरण के साथ-साथ इन पात्रों के जीवन में कविता की झंकार भी है। लगभग सभी नायिकाओं के जीवन को रोमांस का वातावरण घेरे हुए है। उदाहरणार्थ, कुमुदिनी गीतात्मक काव्य और सुकुमार कल्पना के सार की प्रतीक है। 'घर और बाहर' स्पष्टतः समस्यामूलक उपन्यास है। इसमें इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि दाम्पत्य-प्रेम बाह्य जगत की स्पर्धा का कहाँ तक सामना कर सकता है। किसी का दाम्पत्य-प्रेम निरर्थक है जब तक उसकी रक्षा करने वाली दृढ़ दीवारें ढह न जाएँ और उसे अन्य लोगों के आकर्षण के विरुद्ध अपने आप को स्थिर रखने का अवसर न दिया जाए। निखिलेश ने अपनी पत्नी को यह अधिकार दे रखा है। वह राष्ट्रीय संघर्ष के काल में एक क्रांतिकारी नेता के रूप में बह जाती है। वह एक नकली देवता निकलता है, जिसकी नैतिक विशृंखलता को उपन्यास में बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। शीघ्र ही भ्रम टूट जाता है और एक दुःखद घटना हो जाती है। 'कुमुदिनी' (१९२९) अनमेल विवाह की कथा

है। उपन्यास के नायक मधुसूदन का मन कारखाने के सेठ की तरह कड़ा है। वह अपनी पत्नी पर पूरा अधिकार जमाना चाहता है। कुमुदिनी अपने पति के, जिसमें निर्बाध अधिकार भावना विद्यमान है, उत्पीड़न के कारण अपने आप में अधिकाधिक सिकुड़ती जाती है। वह अपने पति का घर छोड़ जाती है और पुत्र के जन्म पर ही लौटती है। बालक उन दोनों के परस्पर मेल की कड़ी है। इन सभी उपन्यासों में रवीन्द्र किसी महत्त्वपूर्ण समस्या को लेते और एक अमूर्त ढंग से उसका चित्रण करते हैं। इस कारण उनकी कहानियों में घटनाएँ व्याख्या के बोझ से दब गई हैं। वह इन घटनाओं को काव्यात्मक सौंदर्य से अलंकृत करते हैं और उन्हें मध्यवर्गीय समाज के मानवीय संबंधों के बीच गूढ़ अन्तर्दृष्टि के प्रतीक के रूप में परिणत कर देते हैं। विवरण पर विश्लेषण का आधिपत्य है और तथ्यों का प्रयोग केवल उनके लाक्षणिक मूल्य के लिए किया गया है। यह शिक्षित वर्ग का विशिष्ट लक्षण है जो शेष ऐतिहासिक क्रम से पृथक् कर दिया गया है, जिससे वह अपनी इस क्षति की पूर्ति को वास्तविकता अथवा जीवन की धुँधली एवं अस्पष्ट व्याख्या में खोजे।

सामाजिक संघर्ष की सूक्ष्म पकड़ और ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज की गूढ़तर जानकारी शरच्चन्द्र की प्रतिभा की विशेषताएँ हैं। उन्होंने मध्यवर्ग के संकीर्ण एवं सीमित जीवन को निर्मम यथार्थता तथा भावुक कल्पना द्वारा चित्रित किया है। इस वर्ग का निर्माण करने वाले सामान्य पुरुष तथा नारियों के साथ-साथ परंपरागत जीवन के छोर पर विचरने वाले अनाथों तथा आवारों का चित्रण भी उन्होंने गूढ़ अंतर्दृष्टि तथा सहानुभूति के साथ किया है। वह श्रेष्ठतम सृजनात्मक

लेखक हैं जो अपने पात्रों में रूढ़ि और प्रयोग, यौवन और वृद्धावस्था, जीवन में परिवर्तन और परंपरा के बीच द्वन्द्व की प्रवृत्ति का समावेश करते हैं। इस द्वन्द्व के विशिष्ट स्वरूप का वर्णन उन्होंने अनोखे ढंग से किया है। वह मध्यवर्गीय जीवन को वृद्धि एवं विकास के अन्तिम चरण के महान कलाकार तथा चित्रकार हैं। आधुनिक मध्यवर्ग का शिक्षित भाग भयंकर सामाजिक संघर्ष में जकड़ा हुआ है। वह जीवन के प्रति अपनी संकुचित दृष्टि के कारण अंधकार में भटक रहा है। फलतः साहित्य के स्वरूप में नैराश्य की भावना का प्राधान्य हो जाता है। मैक्सिम गोर्की ने ठीक ही कहा है कि ह्रासोन्मुख साहित्य का प्रधान विषय किसी मनुष्य की दुःखद गाथा है जिसे अपना जीवन घुटा हुआ जान पड़ता है, जो समाज में अपने-आप को अकारथ समझता है, जो अपने लिए किसी सुखद स्थान की खोज करता है; और उसे पाने में असफल होने पर जो कष्ट झेलता हुआ मर जाता है अथवा उस समाज के साथ सन्धि कर लेता है जो उसके विपरीत हो, या फिर जो मद्यपान अथवा आत्म-हत्या करने के लिए गिर जाता है। शरच्चन्द्र ने इस दुःखमय संसार का वर्णन किया है। उन्होंने तत्कालीन भारतीय स्थिति के करुण महत्त्व को अनुभव किया और ऐसे नायक-नायिकाओं की रचना द्वारा, जो सामान्यतः प्रेम तथा जीवन में निराश हो चुके हों, उसे यथार्थ एवं सशक्त अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने में एक पैनी सामाजिक दृष्टि का विकास किया है जो उनकी कला का मौलिक तत्त्व और उद्देश्य है। उनका यही सामाजिक विवेक उन्हें अपने युग के अन्य लेखकों से विशिष्ट बना देता है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि शरत् किशोरावस्था से ही विद्रोही रहे हैं। यह विद्रोही प्रकृति उनकी

साहित्यिक रचनाओं की ही नहीं, उनके जीवन की भी विशेषता है। लड़कपन में वह शान्त और परंपरागत जीवन के सर्वथा अनुपयुक्त थे। उन्होंने एकाएक अपनी रुचि को पुस्तकों के अध्ययन से जीवन के अध्ययन की ओर लगा दिया। वह घर से भाग निकले और बिना धन के संन्यासी के वेश में स्थान-स्थान पर घूमते रहे। वह तरह-तरह के लोगों के सम्पर्क में आये और इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन के अनुभव को समृद्ध किया। इनमें से कई अनुभव उनकी कृतियों में अमर हो गये हैं। विभिन्न सामाजिक स्तरों एवं व्यवहार के परिवर्तनशील अनुभव ने उनके कोमल मन में अविश्वास के हलके रंग से रँगी सहनशीलता की भावना उत्पन्न कर दी। इसने उनकी सहानुभूति को व्यापक, कल्पना को विस्तृत, तथा समष्टिगत चेतना को गहन बनाया था। बर्मा की यात्रा और उस देश की परिवर्तनशील सामाजिक स्थिति के निकट ज्ञान ने उन्हें उस भारतीय जनता के अध्ययन के यथेष्ट अवसर दिये, जो अपनी परंपरागत धरती से उखड़ चुकी थी। उस देश में भारतीय जीवन का मंथन हो रहा था। वहाँ प्रत्येक प्रान्त और प्रत्येक सामाजिक समुदाय के प्रतिनिधि थे। लोग वहाँ ऐसे व्यक्तियों के रूप में आये जो अपने घर-घाट से उखड़ चुके थे। उनमें से कुछ ऐसे थे जो बिना किसी सामाजिक उद्देश्य के नौका के समान जीवन सागर में डोल रहे थे। इस डोलने के कारण उन्हें अपनी वृत्तियों का ही आश्रय लेना पड़ता था। इसीलिए उनमें एक नए प्रकार का अव्यवस्थित और स्वच्छंद सामाजिक व्यवहार विकसित हो चला। कभी कभी उनका व्यक्तित्व अश्लीलता की सीमाओं को छूने लगता था। 'चरित्रहीन' और 'श्रीकान्त' उपन्यासों में जहाज पर जितने भी यात्री मिलते हैं वे एक

लघु रूप में भारतीय समाज के प्रतीक हैं। बर्मा में अधिक देर रहने के कारण जीवन के अनुभव ने शरत् के दृष्टिकोण को उदार बनाया। इसने उन्हें मानव के वास्तविक महत्त्व का निर्णय करने के लिए रूढ़िगत मान्यताओं की निस्सारता का विश्वास दिलाया। इसका महत्त्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि उनकी समष्टिगत चेतना उदात्त और शिक्षित मध्यवर्ग के सम्मुख आनेवाली सामाजिक समस्याओं के बीच उनकी अंतर्दृष्टि गहरी हो गई। हुमायूँ कबीर शरत्चन्द्र की प्रतिभा-सम्पन्न आलोचना करते हुए लिखते हैं कि लेखक ने लड़कपन में ही एक तीव्र सामाजिक विवेक को पा लिया था, क्योंकि उनका जन्म बंगाल-प्रान्त के सीमा-प्रदेश में हुआ था। उनका कथन है कि सीमा-प्रदेश के रहने वाले लोग साधारणतः अपनी जातीय एवं भाषा-सम्बन्धी विशिष्टता के प्रति देश के मध्यभाग में रहने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सचेत होते हैं। भागलपुर जिले के एक मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखने वाले एक भावुक बालक के लिए यह सम्भव था कि वह एक अतितीक्ष्ण सामाजिक विवेक को विकसित करे। इस तीव्र विवेक को उन्होंने बर्मा की परिवर्तनशील सामाजिक परिस्थितियों पर लागू किया। ऐसा कहा जाता है कि किसी सीमा-प्रदेश के लोग सामाजिक वातावरण के प्रति अधिक सजग होते हैं। अपने विश्वासों और प्रथाओं का विरोध हो ने पर वे चिढ़ जाते हैं। इस तथ्य का निरूपण करने के लिए उस साम्राज्यवादी अंग्रेज़ का उदाहरण ले सकते हैं जो खाना खाने के लिए अपने एकान्त कमरे में भी विशेष पोशाक पहनता है। इसलिए शरच्चन्द्र सामाजिक अनुरूपता में सूक्ष्मतम भेदों के प्रति सचेत थे और इससे वह सामाजिक व्यवहार के वास्तविक महत्त्व को पैनी दृष्टि से देखने

लगे। यह उनके लिए एक अचम्भे की बात थी जब उन्होंने देखा कि किस तरह लोग उन परम्परागत रूढ़ियों का परित्याग कर देते थे जिनके वे घर में अभ्यस्त थे। उन्होंने जीवन के परम्परागत पथ का परित्याग कर उसके स्थान पर नवीन मूल्यों को स्थापित नहीं किया। सामाजिक बन्धनों के टूटने पर एक सामाजिक अव्यवस्था अनिवार्य थी जिसका परिणाम व्यक्तिवाद की अतिशयता और जीवन की विलासिता थी। इस तरह शरत् को उस मानव के अध्ययन का अवसर मिला जो अपनी जन्मभूमि से वियुक्त हो चुका था। नवीन मानव अध्ययन का मोहक विषय था। उसका सब कुछ अपेक्षाकृत नवीन था, उसके मित्र नए थे, उसका मत नया था, उसके नैतिक विचार नए थे, उसकी नारियाँ नई थीं, उसके नौकर नए थे, यहाँ तक कि उसका सामान भी नया था। निष्कर्ष यह कि वह स्वयं एक बिलकुल नया मनुष्य था। शरत् ने मानव-मन के जटिल व्यापारों का विशेषतया उसके नवीन क्षेत्र में निरीक्षण किया। बर्मा में असामाजिक व्यवहार उन्हें पूर्णरूपेण वशीभूत न कर सका, क्योंकि वह अपने आरंभिक जीवन में पहले से ही एक सशक्त सामाजिक चेतना को विकसित कर चुके थे। उनके चिन्तन और कला में पुरातनता का तत्त्व सदैव विद्यमान रहा। इसकी अभिव्यक्ति उनके द्वारा किए गए नारियों के चित्रण में हुई, जिन्हें उनके सामाजिक तथा नैतिक जीवन में यदाकदा चूक जाने पर भी उन्होंने आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। अपनी सामाजिक और बौद्धिक स्वतन्त्रता के होते हुए भी बहुत सी नायिकाएँ परम्परा के प्रति एक गुप्त अनुराग प्रकट किए बिना नहीं रह सकतीं, चाहे उसका कोई जीवन मूल्य न भी हो। सम्भव है कि नारियाँ स्वभाव से पुरातनता एवं परम्परा-प्रिय होती हैं, क्योंकि सामाजिक

बंधनों को छिन्न-भिन्न करने से उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक कष्ट झेलना पड़ता है। उन्होंने अपने आरंभिक जीवन में जिस तीव्र सामाजिक विवेक को विकसित किया था, उसके परिणाम-स्वरूप और बर्मा में सामाजिक अराजकता की प्रबल प्रतिक्रिया के रूप में शरच्चन्द्र नारियों के चित्रण और उनमें विद्यमान परंपरागत मूल्यों के आदर्शीकरण में एक गहरी सनातन प्रकृति का परिचय देते हैं। मनुष्य में नवीनता तथा पुरातनता की प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष शरत् के चिन्तन और कला को रूप देता है। यह संघर्ष मध्यवर्गीय जीवन का अभिन्न अङ्ग है। यह उस सामाजिक वातावरण का भी परिणाम है जिसकी विशेषता राजनीतिक क्रान्ति और सामाजिक प्रतिक्रिया का विचित्र सम्मिश्रण है। शिक्षित मध्यवर्ग के लोग अपनी राजनीतिक और सामाजिक मुक्ति के लिए न तो वर्तमान और न ही भविष्य की ओर देख सकते हैं। वे अपने-आप को अतीत में सिकोड़ लेते हैं और उसका आदर्शीकरण करते हैं। उनके जीवन का मौलिक तत्त्व निराशा है। शरच्चन्द्र ने ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन में नैराश्य की भावना का सशक्त चित्रण किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों और छोटी कहानियों में सामाजिक संघर्ष और निराशा का व्यापक चित्र अंकित करने का प्रयास किया है।

दूसरा अध्याय

उपन्यास (प्रथम श्रेणी)

उनके उपन्यासों और छोटी कहानियों में जिस समाज का चित्र खींचा गया है वह है मध्य तथा उच्चवर्गीय ज़मीदारी समाज। वह उनमें से शिक्षित लोगों को अपने अध्ययन के विषय के रूप में चुनते हैं। उन्होंने शिक्षित मध्य-वर्ग के जीवन को अद्‌भुत स्पष्टता और कलात्मक निस्संगता के साथ चित्रित किया है। विधवा-जीवन की यातनाएँ, निष्क्रिय ज़मीदारी, क्षुद्र षड्‌यन्त्र और डाह, सम्पत्ति की समस्याएँ, शिष्टाचार और सदाचार में साहसिक कार्य, प्रेम तथा वैवाहिक जीवन की धारणा, सामाजिक संस्थाओं तथा रूढ़ियों के प्रति दृष्टिकोण, जाति बंधनों की समस्या—इन सब को उन्होंने स्पष्टरूप से अद्‌भुत यथार्थता और शक्ति के साथ अंकित किया है। अज्ञान, निरक्षरता, मूढ़ विश्वास, आलस्य, तुच्छ डाह, घृणा और अभिमान में डूबे ग्रामीण समाज का चित्र निर्मम अंतर्दृष्टि के साथ और उसे आदर्श बनाने के किसी प्रयास के बिना खींचा गया है।

सामाजिक उद्देश्य तथा सामाजिक समालोचना की स्थिति के अनुसार उनके उपन्यास तीन भिन्न वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं। प्रथम वर्ग के उपन्यासों में प्रधान अभिरुचि मानवीय संबंधों के चित्रण में है। कथा प्रत्यक्ष रूप से किसी समस्या को प्रस्तुत नहीं करती, प्रत्युत पात्रों के बीच के मानवीय संबंधों के प्रदर्शन में समस्या का आभास-मात्र मिल जाता है। कथा में संघर्ष किसी ऐसी स्थिति से उत्पन्न

होता है जिसकी लपेट में कष्ट अथवा व्यथा में पड़े मनुष्य आ गये हों, और व्याख्या के अथवा उसके लिए कोई समाधान प्रस्तुत करने के उद्देश्य से कुछ नहीं कहा गया। जैसे-जैसे उनकी कला विकसित होती है और चिन्तन प्रौढ़ होता है, उनके उपन्यासों का सामाजिक उद्देश्य तथा गुण-दोष विवेचन अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है। द्वितीय वर्ग के उपन्यासों में वह समस्या को प्रस्तुत करके छोड़ देते हैं, परन्तु उसके समाधान का प्रयास नहीं करते। इन उपन्यासों में उन्होंने जीवन की छोटी-छोटी विडम्बनाओं तथा विषमताओं को उनकी व्याख्या करने के किसी प्रयत्न के बिना समाविष्ट किया है। वह स्थायी रूप से असफल प्रेम पर तान तोड़ते हैं, परन्तु इस असफलता-जन्य निराशा से मुक्त होने के किसी स्पष्ट मार्ग का निर्देश नहीं करते। उनके उपन्यासों के द्वितीय वर्ग में ही व्यक्तिगत और समाजगत समस्याओं के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण अपनी समस्त शक्ति, वक्रता तथा व्यंगात्मक शब्दावली के साथ लक्षित होता है। शरत् मानवीय दुख से इतने द्रवित हो उठते हैं तथा उसका निवारण करने को इतने चिन्तित रहते हैं कि कहीं-कहीं वह सामाजिक उद्देश्य एवं समालोचना के आग्रह के सम्मुख कला का परित्याग कर देते हैं। ऐसे उपन्यास सामाजिक अन्याय और उत्पीड़न की निर्मम आलोचना बन जाते हैं। अपने उपन्यासों के तृतीय और अन्तिम वर्ग में वह यहाँ तक कि कला के भ्रम का भी परित्याग कर देते हैं। आलोचना की तीव्र पुकार तथा कर्कश कोलाहल में कला के तत्त्व दब गये हैं और कला निष्फल प्रचार के गढ़े में गिर गई है। उनके बाद के साहित्य का स्पष्टतया सैद्धान्तिक स्वरूप यद्यपि उनकी कला के

मूल्य को कम कर देता है, तथापि उसे सर्वथा समाप्त नहीं कर देता। वह अपने साहित्यिक संतुलन और कलात्मक निस्संगता की निपट शक्ति के द्वारा, जो उनमें गहरे उतरे हुए हैं, अपनी कला की रक्षा करने में सफल हुए हैं।

आगे चल कर उनके उपन्यासों का विश्लेषण करने और उनके चिन्तन तथा कला के विकास को खोजने का प्रयास किया जाएगा, जो अन्ततः निष्फल प्रचार और प्रत्यक्ष सामाजिक आलोचना के रूप में गिर जाती है। ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने अपनी सृजनात्मक शक्ति को अपने आरंभिक साहित्य में लगा दिया था और पाठकों पर धाक जमाए रखने के लिए अपनी कला के अन्तिम रूप में सर्वप्रिय विषयों को अपनाया है। संभव है कि राष्ट्रीय आंदोलन (१९२०-२१) के क्षय ने उन्हें अपने अन्तिम उपन्यासों में सामाजिक मूल्यों का एक नवीन रूप प्रस्तुत करने को प्रेरित किया हो। इसलिए उन्होंने जिन समस्याओं को अपने आरम्भिक साहित्य में उठाया था, उन्हें हल करने के उद्देश्य से अपने अंतिम कथा-साहित्य में अधकचरे विचारों को बिखेरने का प्रयत्न किया है।

'बड़ी दीदी', जो उनके उपन्यास-साहित्य के सर्वप्रथम रूप से सम्बन्धित है, असफल प्रेम की कथा है—वह प्रेम जो विकसित नहीं हो पाया। माधवी एक युवती एवं सौंदर्य-सम्पन्न विधवा है, जिसके लिए समाज की कड़ी रूढ़ियों ने प्रेम करने का निषेध कर रखा है। सुरेन्द्र कलकत्ता विश्वविद्यालय का प्रतिभा-सम्पन्न छात्र था। अन्तिम परीक्षा में सफल होने पर उसे यश-प्राप्ति हुई तथा उसके कई प्रशंसक बन गये। सभी ने उसे उच्चतर अध्ययन के लिए विदेश जाने की

राय दी। परंतु उसकी विमाता ने इसका घोर विरोध किया। उसके विचार में वह अभी बच्चा ही था। उसमें युवकोचित आत्म-विश्वास का नितान्त अभाव था और वह अपने-आपको जीवन के साधारण क्रम के अनुरूप बनाने में पूर्ण असमर्थ था। इसलिए उसने निराश हो कर गृह-त्याग कर दिया और अपने भाग्य की खोज में निकल पड़ा। वह कलकत्ता पहुँचा, जो ऐसे निराश लोगों का बसेरा है; किंतु इस नगर में उसने अपने को निःसहाय पाया। फिर भी भाग्यवश वह एक धनी ज़मीदार के सम्पर्क में आया, जो विधुर था तथा जिसकी दो लड़कियाँ थीं। बड़ी लड़की माधवी विधवा थी। छोटी बहन प्रमिला अभी बच्ची ही थी। सुरेन्द्र को नन्ही बालिका का शिक्षक नियुक्त किया गया। युवती विधवा ने, जो गृहस्थी का प्रबन्ध करती थी, उसकी बच्चों की-सी, निश्चिन्त एवं असावधान प्रकृति को तुरन्त लक्ष्य किया। वह अजान में उसकी सहानुभूति का पात्र बन गया। माधवी ने सुकुमार भाव से उसकी देख-भाल करनी आरम्भ की। पति की मृत्यु के पश्चात् युवती, रूपवती एवं स्नेहशीला माधवी उसके अन्तर के शिशु से स्नेह करने लगी और उसकी ओर अदम्यभाव से खिंच गई। दास-दासियों ने इसे ताड़ लिया और आपस में वे इसकी चर्चा करने लगीं।

इस बीच में माधवी ने अपनी सखी मनोरमा को एक पत्र में सुरेन्द्र के बारे में बहुत कुछ लिखा। मनोरमा अपनी सखी की दुर्बलता को ताड़ गई। उसने उसे इसके विरुद्ध चेतावनी दी, क्योंकि वह एक विधवा थी। सुरेन का विस्मरण करने के लिए वह तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़ी। सुरेन ने उसके अभाव का अत्यधिक अनुभव किया और अपनी शिष्या से कहा कि वह एक पत्र में अपनी बहन से लौट आने

का अनुरोध करे। माधवी लौट आई। साधारणतया सुरेन अन्तःपुर में नहीं आ सकता था; परन्तु उसने उससे मिलने तथा उसे यह बताने के लिए कि उसने उसके अभाव का कितना अनुभव किया था, परंपरा की बाधाओं को तोड़ डाला। वह इसके लिए उद्यत न थी। इसने उसे पूर्णतः अशान्त कर दिया। उसने सुरेन को घर से निकल जाने का आदेश दिया। वह उससे दूर भागना चाहती थी और उससे बोली कि उसकी छोटी बहन के शिक्षक के रूप में अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं। वह उसके अध्ययन की उपेक्षा कर रहा था। ज्यों ही वह उससे अलग हुआ, उसके साथ सड़क पर दुर्घटना हो गई और उसे हस्पताल में ले जाया गया। सुरेन के पिता और माधवी को इसकी सूचना दी गई। वे हस्पताल में उससे मिले। स्वास्थ्य-लाभ करने पर वह अपने घर लौट आया।

पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। किसी दूरस्थ ग्राम में सुरेन एक बड़ा ज़मीदार था जो अपनी रूपवती एवं पतिव्रता पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहता था। वह अपनी माधवी को पूर्णतया भूल न सका। उसकी पत्नी इससे अवगत थी और कभी-कभी उसे इस पर ईर्ष्या भी होती थी। इस बीच में पिता की मृत्यु हो जाने पर माधवी अपने स्वर्गीय पति के घर में आ कर रहने लगी। एक विचित्र संयोग से वह घर एक ऐसे ग्राम में था जो सुरेन की ज़मीदारी में आता था। उसे अपने नौकरों द्वारा असामियों पर किए जाने वाले अत्याचार के आरोपों की जाँच करने के लिए वहाँ जाना पड़ा। जाँच-पड़ताल करते हुए उसे ज्ञात हुआ कि एक माधवी भी अत्याचार की शिकार थी। उसके नाम से वह स्मरण हो आई। वह तुरंत ग्राम में माधवी के घर को घोड़े पर सवार हो कर गया।

उसे पता चला कि वह उसके नौकरों द्वारा बे-घर कर दिए जाने पर पहले से ही वहाँ से चली गई थी। उसने पैदल ही उसकी खोज जारी रखी। आघात और थकान ने उस पर गहरा प्रभाव डाला। वह अभी उस चोट से पूर्णतः स्वस्थ नहीं हुआ था जो कई वर्ष पूर्व उसे सड़क पर दुर्घटना से पहुँची थी। वह नदी के किनारे-किनारे भागा। और उसने माधवी की नाव को जा पकड़ा। उसके अंचल में सुरेन का अवसान हो जाने के कारण यह दोनों का एक दुःखद मिलन था।

इस प्रकार 'बड़ी दीदी' असफल प्रेम की गाथा है। माधवी उन सभी विधवाओं का प्रतिनिधित्व करती है जिनका सुख निष्ठुर भाग्य तथा निर्मम समाज-व्यवस्था द्वारा ध्वस्त हो जाता है। कड़ा संयम एवं दमन उसके प्रेम की विशेषता है। प्रेम को पूरी तरह व्यक्त न कर पाने से उसका जीवन और भी अधिक शोकमय, गहन तथा करुण बन जाता है। सुरेन भी अपने प्रेम को खुले तौर पर व्यक्त नहीं कर पाता। यह दोनों ओर भाँपा और समझा जाता है। सुरेन का शिशु-स्वभाव माधवी की वात्सल्य-भावना को जगाता है और वह शिशु पर अधिकार करने का प्रयत्न करती है। इससे प्रेम की सुकोमल भावनाओं से उसके हृदय के शून्य की ही नहीं, वरन् मातृत्व के लिए नारी की चिरन्तन कामना की भी पूर्ति हो जाती है। अतएव वह सुरेन की देखभाल में पूर्णरूपेण संलग्न हो जाती है और इससे उसके अन्यथा शुष्क हृदय में सुकुमार भाव जाग उठते हैं। उनके बीच का कोमल सम्बन्ध कलात्मक संयम एवं संतुलन के साथ सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। यद्यपि उपन्यास में घटनाओं का क्रम तीव्र है और उनका झुकाव भावोत्तेजक नाटक की ओर है, तथापि लेखक सस्ती रोमांचकारी कथा के रूप में

गिर जाने से उसे बचा लेता है। ऐसा होते हुए भी उपन्यास में संयोग का भाग महत्त्व रूप से प्रधान है। 'बड़ी दीदी' उनकी आरम्भिक कृतियों में से है। उस समय शरत् अभी अपनी शैली को परिपक्व और कला को विकसित नहीं कर पाये थे। पाठक के मन में विस्मय उत्पन्न करने में उनका उल्लास और उपन्यास में वर्णन की ओर उनका अत्यधिक झुकाव इस प्रकार सहज ही स्पष्ट हो जाते हैं।

यह उपन्यास उनके शिष्यकाल की रचना है, अतः इसकी कथा-वस्तु का निर्माण आकस्मिक झटकों और संगठन की शिथिलता से लक्षित होता है। चरित्र-चित्रण स्पष्ट रूप से साधारण है। माधवी, सुरेन, मनोरमा और शान्ति की कुछ मोटी-मोटी विशेषताएँ अंकित की गई हैं और ये पाठक के मन में सहज ही घर कर लेती हैं। सुरेन सर्व-प्रिय नायक है जिसका चित्रण बंगाली उपन्यास में बहुधा हुआ है। एक ज़मीदार का लड़का जो जीवन-संग्राम के लिए असमर्थ है, जीवन की परिस्थितियों द्वारा अकारथ बना दिया जाता है। वह साधारणतया समाज के साँचे में ठीक नहीं बैठता। उसकी उदासीनता, जिसे उसके आचरण के एक सुन्दर रूप में दिखाया गया है, उसके तथा सामाजिक वातावरण के बीच विद्यमान अन्तर की उपज है। उसे अपने सामाजिक समुदाय से अलग किया गया है और वह अपनी धरती से उखड़ चुका है। वह वास्तव में उस वातावरण को बदलने अथवा उसके द्वारा स्वयं परिवर्तित होने के लिए उसमें नहीं रहता। इस अर्थ में वह उन 'व्यर्थ' लोगों के वर्ग से सम्बन्धित है जो सांस्कृतिक पतन तथा सामाजिक विघटन की उपज है।

माधवी अतीत की नारी है। वह उन सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व

करती है जो समाज की सामन्तीय व्यवस्था के विशिष्ट लक्षण थे। वह भारतीय नारीत्व की शालीनता एवं कमनीयता से विभूषित है। उसकी भूल केवल संयोग का परिणाम है। सुरेन भी उसे कभी मनाने की नहीं सोचता। मोह अथवा प्रेम का प्रतिरोध उसके जीवन का प्रमुख प्रयास था। उसने इसे एक सामाजिक आदर्श का रूप दिया। उन्होंने एक दूसरे को अनजान में निकाल दिया। इसमें भाग्य का हाथ निश्चित था। उसके प्रेम की असफलता का कारण एक ऐसी शक्ति थी जो उसके वश के बाहर थी। वह एक विधवा थी जिसके लिए प्रेम करना वर्जित था। उसने अपने आपको प्रेम के प्रति अर्पित कर दिया, परन्तु शीघ्र ही उसने अपनी भूल अनुभव की और अपने कदम पीछे हटा लिए। माधवी और सुरेन हमारी श्रद्धा के नहीं वरन् दया के पात्र हैं, क्योंकि वह अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई साहसपूर्ण प्रयत्न नहीं करते।

'देवदास' भी भग्न-हृदयों की गाथा है। देवदास एक युवक था, जिसका जन्म तथा पालन-पोषण एक समृद्ध किंतु सीधे-सादे ग्राम के शान्त वातावरण में हुआ। वह एक धनी ज़मीदार का पुत्र था; किंतु भाग्यवश वह पार्वती नाम की एक निर्धन पड़ोसी की पुत्री से प्रेम करने लगा। सामाजिक बाधाओं के होते हुए वे परस्पर स्नेह करते थे। वे यह कदापि न जानते थे कि ये बाधाएँ कितनी अलंघ्य थीं और उन पर विजय पाना कितना कठिन था। वे कभी अनुमान नहीं लगा सकते थे कि भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है। एक समय आया जब देवदास को अपनी शिक्षा के लिए नगर को जाने के लिए अपनी बालपन की साथिन से बिछुड़ना पड़ा। विदाई दुःखद थी। उसके माता-पिता की

यह माँग थी। देवदास को जाना पड़ा; और पार्वती उसकी अनुपस्थिति में निरन्तर अश्रु बहाती रही। उसे अपने माता-पिता और समाज द्वारा आयोजित अपने विवाह के लिए स्वयं को तैयार करना पड़ा। उसका पति पड़ोस के किसी ज़िले का एक बड़ा ज़मीदार था। इन राय साहब की आयु चालीस वर्ष से ऊपर थी। यह उसका दूसरा विवाह था और वह बड़े-बड़े बच्चों का पिता था। देवदास ने इसके बारे में सुना। उसने विषमताओं पर विजय पाने का एक अन्तिम प्रयास किया; परंतु समाज की रूढ़ियों का पलड़ा भारी रहा और दो कोमल हृदय टूट गए। देवदास नगर को लौट आया। पार्वती, जिसका जीवन विधि के एक प्रहार से ध्वस्त हो चुका था, अपने वृद्ध पति के साथ नए घर में मूक वेदना सहने के लिए चली गई। देवदास धनी किंतु दुःखी था। शिथिल आचरण वाले अवसरवादी मित्रों ने उसे घेर लिया। चुन्नीलाल ने उसे निराशा से निकलने का पथ दिखाया। इस प्रकार उसके जीवन में सुरा और कामिनी का आगमन हुआ। देवदास की भेंट चंद्रमुखी नाम की एक लड़की से हुई जिसने जीविकोपार्जन के लिए अपनी देह बेच डाली थी। चंद्रमुखी ने उसे अपने सामान्य ग्राहकों से भिन्न पाया। देवदास अपनी व्यथा भुलाने के लिए मद्यपान करता और चन्द्रमुखी से घृणा करता था। चन्द्रमुखी ने उसमें जो कुछ पाया वह यह था कि उन दोनों को इस पेशे से घृणा थी। वह उससे प्रेम करने लगी, किंतु वह ऐसा न कर सका। चन्द्रमुखी एक और भग्न-हृदय थी, परंतु उसने अपने पेशे का परित्याग कर दिया। देवदास ने अपने मानसिक ताप को डुबो देने की आशा से मद्यपान जारी रखा।

दिन, मास तथा वर्षों के क्रम से समय व्यतीत होता गया। पार्वती

को उसका समाचार मिला और वह उसके पास आई। वह उससे यह प्रतिज्ञा लेना चाहती थी कि वह मद्यपान का परित्याग कर देगा। वह ऐसा प्रण नहीं कर सका, परंतु उसने पार्वती को एक वचन दिया कि वह अपनी मृत्यु से पूर्व कम से कम एक बार उसकी सहायता, करुणा, उसके अश्रुओं के लिए उसके पास आएगा। उसने मृत्यु का आह्वान किया और मृत्यु ने उसका आमंत्रण स्वीकार किया। उसका मानसिक कष्ट बढ़ गया। वह विक्षिप्त एवं पागल व्यक्ति की भाँति स्थान-स्थान पर भटकता रहा। उधर पार्वती अपने नए घर के एकान्त में नीरव अश्रु बहाती रही। वह एक आज्ञाकारिणी, कर्त्तव्यपरायणा तथा पतिव्रता नारी थी। लोग उसकी सराहना करते। पति उसका आदर करते। वे यह न जानते थे कि उसकी अन्तरात्मा मर चुकी थी। एक दिन एक शव के मिलने से ग्राम की शान्ति भंग हो गई। इस घटना से वह छोटा-सा ग्राम हिल उठा। पुलिस ने इसकी जाँच की और मृत व्यक्ति को पहचान लिया। देवदास अपना वचन निभाने के लिए रात-भर यात्रा करता रहा और निपट श्रान्ति के कारण उसका अवसान हो गया था। पार्वती को यह जान कर गहरा आघात पहुँचा। लकड़ी के कुछ टुकड़े और आग की एक लपट और वह अब न रहा। पार्वती और कुछ न कर सकी; उसने केवल अपने घर की ऊँची दीवारों के पीछे से यह सुना कि उसका देवदास इस संसार में नहीं रहा।

'देवदास' प्रणय की भयंकर और निराशाजनक गाथा है। पार्वती रूढ़ि के विरुद्ध लड़ने के लिए उद्यत थी। देवदास इसके लिए तैयार न था। रायसाहब से विवाह हो जाने पर भी उसमें देवदास को अपना कहने का नैतिक साहस था। देवदास के माता-पिता ने सामाजिक

विषमता, जाति-भेद और सुपरिचित पड़ोस के कारणों से उनके विवाह का विरोध किया । पार्वती के माता-पिता ने उसका विवाह किसी अन्य व्यक्ति से कर दिया, चाहे वह आयु में उससे कितना ही बड़ा था। दोनों का पलड़ा बराबर रहा। देवदास पार्वती का इष्ट बना रहा। वह एक पतिव्रता पत्नी के समान गृहस्थी के सभी कर्तव्यों का पालन करती, किन्तु अपने बालपन के प्रेम को भुला न सकी। वह बाह्य-जगत में अपने-आप को व्यस्त रखती, किन्तु इससे उसके हृदय के रिक्त स्थान की पूर्ति न हो सकी। साथ ही उसे पति के प्रति अश्रद्धा के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

पार्वती उन सभी नारियों का प्रतिनिधित्व करती है जो अनमेल विवाह होने से जीवन में निराश हो जाती हैं। देवदास निराश प्रेमियों का प्रतीक है। वह प्रेमी के रूप में असफल रहा है, योग्य पुत्र सिद्ध नहीं हुआ तथा जीवन में निराश हो गया है, फिर भी वह स्नेह का पात्र है। वह श्रद्धा की अपेक्षा दया को द्रवित करता है। मानव-जीवन के धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर होने वाले क्षय का चित्रण अत्यन्त करुणाजनक है और अन्त में वह मानव-जीवन मृत्यु के वशीभूत हो जाता है। चंद्रमुखी से यदाकदा भेंट करने और मधु के प्याले में अपनी व्यथा को डुबो देने के अथक प्रयास करने पर भी देवदास अपने बालपन के प्रेम के पात्र में पूर्णरूप से लीन है। यह पात्र उसके मन पर छा गया है। पार्वती उसके जीवन का आदर्श है। उसने बचपन में उसे पाया था; किन्तु यौवन प्राप्त होने पर विधि के निर्मम हाथ ने उसे उससे छीन लिया। यह एक भयंकर चोट थी जिससे वह स्वस्थ न हो सका। उसकी मृत्यु से अनेक समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। शास्त्राधारित समाज-व्यवस्था

की आलोचना की गई है जो उनका सुख नष्ट करने का मुख्य कारण थी। स्वयं देवदास को अपने दुर्भाग्य के लिए कुछ अंशों में दोषी ठहराया जा सकता है। वह उचित अवसर पर परम्परा के विरुद्ध नहीं लड़ा, परंतु तब वह समाज की मध्यवर्गीय व्यवस्था की उपज था। इस समाज के विधान में युवक-युवतियों के लिए अपने जीवन-साथी के चुनाव में भी माता-पिता के प्रति विद्रोह करना सहज नहीं है। देवदास को अपनी लकीर की फकीर माँ की इच्छा के सम्मुख झुकना पड़ा। चंद्रमुखी का हृदय-परिवर्तन इस दुःखान्त गाथा के निराशाजनक प्रभाव को कम कर देता है। उसके चरित्र में परिवर्तन ला कर शरत् ने प्रेम की शक्ति एवं बल को प्रकट किया है। उपन्यास का प्रधान विषय प्रेम की नैतिक विजय है। चरित्र-चित्रण सरल किन्तु पुष्ट है, संवाद सशक्त रूप से नाटकीय और तीक्ष्ण रूप से व्यंगात्मक हैं। कभी-कभी संवाद भावों की उड़ान तथा तीव्रता को व्यक्त करने के लिए सूत्र रूप धारण कर लेता है। विवाह से पूर्व पार्वती की मर्मभेदी उक्तियाँ, उसके सुखी वैवाहिक जीवन के प्रति देवदास के तीखे व्यंग्य, चंद्रमुखी द्वारा अपने तुच्छ जीवन का प्रकाशन— ये सभी नाटकीय संवाद की कला के उत्कृष्ट रूप हैं। इस करुण कथा की द्रुत गति और घटनाओं का तीव्र क्रम मानव-जीवन के नैराश्य तथा क्षय के प्रभाव को मार्मिक एवं गम्भीर बनाते हैं।

'काशीनाथ' भी शैशव के प्यार की कहानी है; किंतु इसमें कोई करुण स्वर सुनाई नहीं देता। बीसवर्षीय, रूपवान, बुद्धिमान किन्तु अत्यधिक नटखट, चंचल प्रकृति के काशीनाथ को अपने स्नेहशील पिता के लाड़-प्यार और एक नौवर्षीय साथिन बिंदु के बहन के-से प्यार का सुख प्राप्त था। अकस्मात् भाग्य का पासा पलटा। उसके पिता

उसके लिए केवल रामायण की एक प्रति, शिक्षा के कुछ शब्द और अपनी ब्राह्मण वंश-परंपरा को छोड़ कर चल बसे। काशीनाथ को अपने पिता के संरक्षक प्रियनाथ मुखोपाध्याय के पास भेज दिया गया, जो एक धनी, धर्म-परायण तथा परोपकारी जीव था। उसे यह लड़का अपनी एकमात्र पुत्री के लिए उपयुक्त वर जँचा। उस सम्पन्न ज़मीदार ने काशीनाथ के प्रति अपने स्नेह तथा उसे अपने परिवार का एक सदस्य बनाने की अपनी योजनाओं का कोई दुराव न रखा। उसने तुरंत अपने भावी दामाद को अपनी पुत्री का आदर्श पति और अपनी रियासत तथा सम्पत्ति का योग्य प्रबन्धक बनाने की तैयारी की। काशीनाथ अपनी जन्म-भूमि से दूर कर दिया गया और अपनी बाल-संगिनी बिन्दु से छीन लिया गया। इस नवीन घेरे में उसने जीवन को गम्भीरता से अपनाया। उसके शिक्षक और संरक्षक उससे स्नेह करते तथा उसकी उचित ढंग से देखभाल करते। ज़मीदार की पुत्री कमला उसकी ओर क्रमशः आकृष्ट होने लगी। शिक्षा और शिक्षण समाप्त होने पर उसे रियासत के प्रबंध का भार सौंप दिया गया। शीघ्र ही इस आदर्श जोड़ी का धूमधाम के साथ विवाह हो गया। दोनों अत्यन्त प्रसन्न थे। वे अपने नव-प्राप्त सुख में लीन थे, तभी बिंदु का एक पत्र आया जिसमें उसने काशीनाथ के आगे अपने कष्टों को प्रकट किया और उसकी सहायता की याचना की थी। काशीनाथ अपने उत्तरदायित्वों के प्रति पूर्ण रूप से सजग और अपनी प्रतिज्ञा के प्रति दृढ़ था। वह किसी से भी अपने आकस्मिक प्रस्थान का कारण बताए बिना ही तुरंत उसकी सहायता के लिए रवाना हो गया। इससे प्रियनाथ और कमला स्वभावतः घबड़ा उठे।

कई दिनों की खोज के अनन्तर काशीनाथ अपनी बहन बिंदु से मिला। उसने उसके रोगी पति को सब तरह से सहायता पहुँचाई और उन्हें स्वस्थ तथा सुखी बनाया। वह अपनी प्रिय पत्नी के पास घर लौटने को था। इसी बीच प्रियनाथ ने, जो काशीनाथ से चिढ़ गया था और उसके चरित्र के बारे में शंकालु हो गया था, अपनी वसीयत को बदल डाला तथा पुत्री के नाम सब कुछ कर दिया। इसके पश्चात् शीघ्र ही वह चल बसा। वृद्ध की मृत्यु आकस्मिक है और लेखक द्वारा गढ़ी गई जान पड़ती है। कमला ने एक प्रबन्धकर्ता को नियुक्त किया जिसने अपने पाश्चात्य विचारों तथा शिक्षा द्वारा पुराने ढंग की रियासत में नई व्यवस्था स्थापित की। घर लौटने पर काशीनाथ रियासत की व्यवस्था में मूल परिवर्तन देख कर दंग रह गया। नया प्रबन्धक खल-नायक का खेल खेलने लगा। वह काशीनाथ के चरित्र के विरुद्ध कमला के कान भरने लगा; और इसने उन दोनों के बीच वैमनस्य उत्पन्न कर दिया। वह कपटी प्रबन्धक प्रत्येक छोटी-से-छोटी घटना का भी मिथ्या विवरण देता। बिंदु का नाम उसकी शंकालु पत्नी को विरुद्ध करने के लिए घसीटा गया। काशीनाथ पर विपदा आ टूटी। उस प्रबन्धक के कुचक्र कुछ काल के लिए सफल हुए; और एक निर्जन रात्रि को उसे अपनी पत्नी से विदा होना पड़ा। ज्योंही वह वहाँ से निकला, उस व्यवस्थापक के साथियों ने उस पर गहरा वार किया। इस धावे की खबर दावाग्नि की भाँति फैल गई। बिंदु उस स्थान पर आ पहुँची और उसने काशीनाथ को फिर से स्वस्थ बनाया। कमला के मन से भ्रम का आवरण हट गया और पति-पत्नी में मेल हो गया।

यद्यपि 'काशीनाथ' बालपन के प्यार की कहानी है, तथापि यह

'देवदास' से भिन्न है, क्योंकि बचपन के दो साथियों के बीच परिणय की कोई कामना नहीं है। लड़कपन में काशीनाथ जीवन की परिस्थितियों द्वारा अपनी साथिन से छीन लिया गया। धनी लोगों के साथ उसके संसर्ग और एक साधारण स्थिति के व्यक्ति के साथ बिंदु के विवाह ने दोनों के बीच कोई अन्तर उत्पन्न नहीं किया। उपन्यास में प्रधान समस्या डाह की है, जो प्रत्येक वस्तु को बढ़ा-चढ़ा कर देखता है, शंका को तथ्य में परिणत करता है, जीवन को दूभर बना देता है और प्रेम को घृणा का रूप दे देता है। इस भयंकर दैत्य ने दम्पति के जीवन में संघर्ष पैदा कर दिया और एक ओर भ्रम उत्पन्न करके उनके पारस्परिक सम्बन्ध को दूषित कर दिया। उपन्यास के अंत में जिस संधि पर तान तोड़ी गयी है, उसके अनुसार सारा कष्ट जो सबको झेलना पड़ा अनावश्यक था। काशीनाथ को चाहिए था कि वह बिंदु के साथ अपने सम्बन्ध अपनी पत्नी के आगे स्पष्ट कर देता, किंतु वह स्वभाव और शिक्षा से मितभाषी था। वह एक अंतर्मुखी बालक तथा निष्कपट व्यक्ति था जो कभी यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि ईर्ष्या प्रेम के स्रोत को पंकिल कर देगी अथवा नाश का कारण बनेगी। उसका विचार था कि लौटने पर वह अपने आकस्मिक प्रस्थान का कारण स्पष्ट कर देगा। उसकी ओर से तनिक उदासीनता तथा असावधानी ने उसकी अनुपस्थिति में स्थिति को गम्भीर बना दिया। प्रियनाथ मुखोपाध्याय संकीर्ण और साधु प्रकृति का व्यक्ति था। वह ईर्ष्या और शंका द्वारा सहज ही प्रभावित हो जाता। वह एक ऐसी समाज-व्यवस्था की उपज था जिसमें सम्पत्ति मानवीय संबंधों को बनाती और बिगाड़ती है। उसने हाल में नियुक्त हुए प्रबंधक के षड्यंत्रों को ध्यान से सुना

जिसे अपना स्वार्थ सिद्ध करना था। काशीनाथ दम घोंटने वाले मध्यवर्गीय समाज की पकड़ में आ गया जिस पर धन और सम्पत्ति का आधिपत्य था। उसके सरल एवं ग्रामीण स्वभाव को इस जगत का सामना करना कठिन जान पड़ा। बिंदु और काशीनाथ की निष्कपट शिशु-प्रकृति को ईर्ष्यालु और सम्पत्ति पर आश्रित मध्यवर्गीय समाज की पृष्ठभूमि में अंकित किया गया है। इस कहानी का निर्माण सरल और प्रभाव सरलतर है। उपन्यास में किसी भी सामाजिक समस्या को प्रत्यक्ष रूप से खड़ा नहीं किया गया। शरत् कुछ उलझनों, तनिक निराशा एवं पीड़ा और अन्त में यथेष्ट सुख से पूर्ण जीवन की गाथा कहने में संतोष कर लेते हैं। अपनी आरंभिक कृतियों में लेखक ने समस्त उलझनों तथा समस्याओं से युक्त जीवन का निरीक्षण भर किया है।

'लेनदेन' भी उनकी आरंभिक कृतियों में से है। यह एक दुराचारी ज़मीदार की कहानी है जिसका अंत में प्रेम की अमोघ शक्ति द्वारा रूपान्तर हो जाता है। उस आचारभ्रष्ट ज़मीदार को बदलने का गौरव षोड़शी नाम की एक युवती एवं रूपवती लड़की को प्राप्त है, जिसने अपने आप को ग्राम के मंदिर की आराधना के प्रति अर्पित कर रखा है। जीवानंद एक निर्दयी प्राणी है जिसने अपने असामियों का जीवन दूभर बना रखा है। वह एक ऐसे ग्राम में आ ठहरा है जहाँ उसे जीवन के सभी सुख-साधन—सुरा और कामिनी—प्राप्त हों। षोड़शी जो ग्राम के मंदिर की पुजारिन है उसकी कामुकता की भावी शिकार है। प्रचलित परंपरा के पालनार्थ उसने अपने पति को किसी अज्ञात स्थान को भेज रखा है। मंदिर की देवी इस त्याग की माँग करती है।

जीवानंद का आचार-विचार अव्यवस्थित है और वह हर समय दुष्टों से घिरा रहता है जो उसके लिए भोग-विलास की सामग्री उपस्थित करते हैं। वे लोग षोड़शी को बलपूर्वक उसके दरबार में ले जाते हैं। वह उसके निजी कमरे में उससे भेंट करती है। वह एकाएक उसके रूप और यौवन पर मुग्ध हो उठता है। कुछ क्षण के परिचयात्मक वार्तालाप के बाद षोड़शी घर लौटने का आग्रह करती है। जीवानंद उसे बातचीत में उलझाए रखता है और उसे इस बहाने से जाने नहीं देता कि उसके लिए रात्रि के अंधकार में देर से लौटना अनुचित है। वह उसके पाश से मुक्त होने के लिए बंदी पक्षी की तरह छटपटाती है। उस फंदे से निकलने के लिए उसका हाथ-पाँव पटकना अकारथ जाता है। वह उसकी सद्भावनाओं को जगाना चाहती है, किंतु उसकी कड़ी पकड़ से बच निकलने के उसके प्रयास असफल होते हैं। जीवानंद कठोर धातु का बना हुआ है। पाप उसके जीवन का अभिन्न अंग है; यह मानो उसके प्राण ही हैं। वह एक पक्का पापी है, परंतु षोड़शी के सतीत्व को नष्ट करने के उसके प्रयत्न अचानक पेट में दर्द उठने से निष्फल हो जाते हैं। षोड़शी रात भर रोग-ग्रस्त जीव की सेवा करती है, किन्तु सवेरा होते ही उसके माथे पर कलंक का टीका लग जाएगा। उस लड़की को नियम के विरुद्ध रोक रखने के कारण जिस समय ज़मीदार का घर पुलिस के सिपाहियों और मैजिस्ट्रेट से घिर जाता है, तब षोड़शी को उसके विरुद्ध साक्षी देने को कहा जाता है। वह सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले कर ज़मीदार को बचा लेती है। यह उसका महान त्याग है। वह जानती है कि उसे अपयश और सामाजिक आलोचना का बोझ उठाना पड़ेगा। उसे पुराणपंथी लोगों के आक्षेप

सहने पड़ेंगे। जीवानंद उसकी उदारता और त्याग से द्रवित हो उठता है। वह उसके प्रति अपने पिछले दुर्व्यवहार के लिए पश्चात्ताप करता है। कहानी में उस स्थान पर व्यंग्य का पुट दिया गया है जब जीवानंद अपने प्रति की गई षोड़शी की सेवाओं के पुरस्कार के रूप में उसे धन देना चाहता है। पेट-दर्द का एक और वार उन दोनों को एक-दूसरे के अधिक निकट ला देता है। वह पातकी जीव प्रेम और त्याग की अमोघ शक्ति को अनुभव करता है। मंदिर जाने वाले पुरातन-पंथी और दूसरे ग्रामीण लोग षोड़शी की निन्दा करते हैं। उनके विचार में वह एक पतित नारी है जो देवालय की कुमारी पुजारिन के कर्त्तव्यों का पालन करने के सर्वथा अनुपयुक्त है। उस पर आरोप लगाए जाते हैं और वह अपने पद से अलग कर दी जाती है। वह एक ही समय ज़मीदार और मंदिर की देवी की पूजा नहीं कर सकती। हेम गाँव में अकेली है जो उसके चरित्र की निंदा करने में सम्मिलित नहीं होती। वह एक निर्मम समाज द्वारा पीड़ित है, क्योंकि वह अपनी सच्चरित्रता को प्रमाणित करने में अशक्त है। लोगों के दुतकारे जाने पर वह एक झोंपड़ी में रहने का निश्चय कर लेती है। दुर्भाग्यवश उसपर ज़मीदार के विरुद्ध उसकी रैयत में घृणा फैलाने का आरोप लगाया जाता है। यह मानो जले पर नमक छिड़कना है। जीवानंद, जो षोड़शी के निस्वार्थ प्रेम द्वारा रूपान्तरित हो गया है, अर्द्धरात्रि के समय उसकी कुटिया पर आता है और दोनों मंदिर के हित की बात सोचते हैं। वह षोड़शी को गाँव में रखने का भरसक प्रयत्न करता है, किंतु वह उसे एकाकीपन और अंधकार में छोड़ देती है। वह इस वियोग से अत्यधिक व्याकुल हो उठता है। वह अपने विलास के जीवन को त्याग देने का निश्चय कर

लेता है। षोड़शी की मौन व्यथा और निःस्वार्थ प्रेम ने उसमें मूल परिवर्तन ला दिया है। विदा होते समय वे एक दूसरे के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते और छिपाते हैं। वह उसकी पत्नी बन गई है—ऐसा वह अपने मित्र को एक पत्र में लिखता है। षोड़शी उसके प्रेम के वशीभूत हो जाती है और वे किसी अज्ञात दिशा की ओर चल पड़ते हैं।

इस उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण अन्य उपन्यासों से तनिक भिन्न है। प्रथम अध्याय से उत्कर्ष आरंभ होता है। जीवानंद और षोड़शी प्रधान पात्र हैं और निर्मल तथा हेमवती गौण। प्रधान पात्रों में विद्यमान संघर्ष कथानक के विकास के साथ-साथ चलता है। निर्मल का डाह और विरोध उनके प्रेम और मिलन की राह में बाधा पहुँचाते हैं। ज्यों ही जीवानंद को इसका पता चला, उसने अपने काम का परित्याग किया, षोड़शी को पाया और उसके साथ चल दिया। प्रासंगिक कथा की उद्-भावना उपन्यास के प्रधान विषय पर ध्यान केंद्रित करने के लिए की गई है। जीवानंद समाज की ह्रासोन्मुख सामन्तीय व्यवस्था का प्रतिरूप है। वह अकारथ व्यक्ति का सच्चा प्रतिनिधि है जो मध्यवर्गीय साहित्य का मनोनीत नायक है। जीवानंद समाज से पृथक् कर दिया गया है और वह अपने शून्य अन्तस्तल को सुरा और कामिनी के शून्यतर सुख से पूर्ण करता है। जिस क्षण उसे सच्चे प्रेम की झलक मिलती है, उसमें मूल परिवर्तन आ जाता है। वह अपनी खोई हुई मानसिक समरसता को फिर से पा लेता है। उसका रूपान्तर उस महान त्याग का परिणाम है जो षोड़शी ने उसकी प्रतिष्ठा तथा जीवन की रक्षा करने के लिए किया है। शरच्चन्द्र ने इस दुराचारी व्यक्ति के चरित्र और जीवन की उदात्त भावनाओं के अनुरूप बनने की उसकी क्षमता का विशद चित्रण किया है। जीवानंद

अपने परिजनों की दृष्टि में निस्संदेह पतित है। उसकी सद्भावनाएँ सुप्त पड़ी हैं। वह अपने आंतरिक सामर्थ्य एवं बल के प्रति सचेत नहीं है। जिस क्षण षोड़शी अपने प्रेम तथा त्याग से उन्हें जगाती है, वह अवसर का लाभ उठाता है। शरच्चन्द्र मानव के भीतर की दिव्यता को प्रकट करने को चिन्तित हैं जो सामाजिक रूढ़ियों तथा संस्थाओं के भार के नीचे दबी पड़ी रहती है। षोड़शी सामाजिक उत्पीड़न और आलोचना की शिकार होने पर भी वास्तव में महान है। उपन्यास की शैली अपरिपक्व है; परंतु लेखक लगभग सभी कहानियों में जीवन के प्रति अपने प्रधान एवं मौलिक दृष्टिकोण को दुहराने में कभी नहीं अघाता।

'श्रीकान्त' उनकी श्रेष्ठतम रचनाओं में से है जिसमें जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण अपने विशुद्ध रूप में समाविष्ट है। प्रेम और कर्तव्य, यौवन और वृद्धावस्था तथा अतीत और वर्तमान के बीच विद्यमान द्वन्द्व उनकी लगभग सभी कृतियों पर छाया हुआ है और इसी द्वंद्व के चित्रण में हमारे लिए अनोखा आकर्षण है। यह द्वन्द्व उनके दृष्टिकोण और कला का मौलिक आधार है। शरच्चंद्र पर अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में हुमायूँ कबीर ने विवेचन किया है कि किस प्रकार इस उपन्यास के आरंभ में ही समस्या को खड़ा किया गया है। युवक, मिलनसार और उत्साही इन्द्रनाथ आदि-पुरुष का प्रतीक है। जीवन की आवश्यकताएँ उसे आगे बढने को प्रेरित करती हैं। सामाजिक रूढ़ियाँ उसे रोक नहीं सकतीं; क्योंकि वह उन्हें मानता ही नहीं है। वह जीवन के सहज और सरल स्वरूप का प्रतीक है। प्रथम बार उसके सम्पर्क में आने पर श्रीकान्त विस्मय-विमूढ़ हो जाता है। इससे उसे प्रसन्नता भी होती है,

क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति से मिला है जो अतीत का बन्दी नहीं है तथा जो सामाजिक रूढ़ियों और विश्वासों के भारी बोझ के नीचे दबा हुआ नहीं है। उसका जीवन अपना है। श्रीकान्त साहसिक जीवन के आह्वान से प्रभावित हो जाता है और एक क्षण के लिए वह अपनी सहज प्रेरणा के वशीभूत हो जाता है जो उसके लिए निषिद्ध फल के चखने के समान है।

फुटबाल मैच की समाप्ति पर एक झगड़े में जिस समय श्रीकान्त अपने को गुण्डों से घिरा हुआ पाता है, तभी इन्द्रनाथ प्रथम बार दर्शन देता है। यह प्रसंग चाहे जितना ही साधारण-सा हो, लेकिन है बहुत महत्त्वपूर्ण। इन्द्रनाथ उसकी रक्षा करता है और लापरवाही से उसे कुछ नशीली पत्तियाँ चबाने को देता है। जब श्रीकन्त उन्हें लेने से इनकार कर देता है, तो वह उससे सिगार पीने का अनुरोध करता है। श्रीकान्त, जो स्वभाव से पुराने विचारों का है, अपने आप को अपमानित अनुभव करता है और पूछता है कि यदि किसी ने उसे सिगार पीते देख लिया तो क्या बनेगा। इन्द्रनाथ अस्वीकृत सिगार को जलाता है और जनाकीर्ण मार्ग से भाग जाता है। श्रीकान्त जीवन के इस अनुभव से परेशान हो जाता है। जब भी वह अपने नए मित्र से मिलता है, जीवन की आदिम तथा मौलिक प्रेरणा उसे बहा ले जाती है। उसकी अनुपस्थिति में वह इस सामाजिक स्वेच्छाचार के विपरीत रूढ़ियों एवं परंपराओं के वशीभूत हो जाता है। मध्यवर्गीय कुलीनता की भावना रूढ़िगत जीवन की ओर ले जाती है। श्रीकान्त को भयंकर तथा साहसी जीवन की पुकार का विरोध करना कठिन जान पड़ता है। वह परंपरा और प्रयोग के बीच लटक रहा है। परंपरा पराजित हुई जान पड़ती है

और वह मानव की अन्तःप्रेरणा के वशीभूत हो जाता है। यह श्रीकान्त के जीवनानुभव का प्रथम चक्र है।

चूँकि जीवन-शक्ति और परंपरा के बीच चिरंतन संघर्ष है, इसलिए अन्नदा दीदी श्रीकान्त को उसके मित्र के प्रबल प्रभाव से बचाने के लिए सामने आती है। वह परम्परा की शक्तियों का प्रतिनिधत्व करती है। उसने सतीत्व की वेदी पर अपनी समस्त कामनाओं की बलि चढ़ा दी है। वह सामाजिक अन्याय की शिकार है और जीवन में किसी काल्पनिक भूल के कारण लोगों की दृष्टि में अपराधिनी है। अतीत उसमें इतना गहरा उतरा हुआ है कि वह वर्तमान में नहीं रह सकती। इसीसे वह परंपरा की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। इन्द्रनाथ उसके बिलकुल विपरीत है। वह वर्तमान में रहता है। हुमायूँ कबीर के मतानुसार ये दोनों पात्र उपन्यास से शीघ्र ही लुप्त हो जाते हैं, क्योंकि मानव-प्रकृति उलझी हुई है और यदि उनके चरित्र का समूचा चित्र खींचा जाता तो वे जीवन की मौलिक प्रेरणाओं का उनके विशुद्ध रूप में प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ हो जाते। इसीलिए अन्नदा दीदी का कथा के पूर्ण विकास से पहले ही अवसान हो जाता है। इन्द्रनाथ भी, जो उसके चरित्र का पूरक है, उसके साथ ही लुप्त हो जाता है। इस प्रकार श्रीकान्त के मानसिक अनुभव का द्वितीय चक्र जीवन में परंपरा की विजय के साथ समाप्त होता है। प्रथम अनुभव पर परंपरा का विरोध छाया हुआ था। चूँकि परंपरा और परंपरा के बीच संघर्ष जीवन का मौलिक आधार है, इसलिए इन दोनों प्रतीक-चरित्रों का अनिवार्य महत्त्व है।

श्रीकान्त और राजलक्ष्मी इस संघर्ष की उपज हैं और यह उनके

पारस्परिक सम्बन्धों को निश्चित करता है। श्रीकान्त आवारा तथा घुमक्कड़ बन जाता है; राजलक्ष्मी गायिका बन जाती है। वे उपन्यास में लगभग चार बार एक-दूसरे की ओर प्रबल रूप से आकृष्ट होते और फिर शनैः शनैः दूर हो जाते हैं। कभी परम्परा का पलड़ा भारी होता है और कभी जीवन की पुकार का। जीवन के अधिकांश भाग तक उनका प्रेम असफल ही रहता है। विधवा होने के कारण राजलक्ष्मी के लिए किसी और व्यक्ति से प्रेम करना निषिद्ध है, किंतु श्रीकान्त से प्रेम करने की उसकी इच्छा अदम्य है। वह सेवा और त्याग के द्वारा श्रीकान्त पर एकाधिकार जमाने का प्रयत्न करती है। वह उसकी बीमारी में उसकी सेवा करती है और उसे फिर से स्वास्थ्य एवं जीवन की प्राप्ति कराती है। यह एक सामान्य साधन है जिसे लेखक कहानी में नायिका को अपने प्रेम-पात्र को वशीभूत करने में समर्थ बनाने के लिए अपनाता है। राजलक्ष्मी उसके लिए अपनी सुख-सुविधा का परित्याग करने को तैयार है। वह डाह से मुक्त नहीं है जो अपनत्व पर आधारित प्रेम का विशिष्ट लक्षण है। श्रीकान्त यह जानने के लिए कि राजलक्ष्मी वास्तव में उससे प्रेम करती है उसमें जानबूझ कर ईर्ष्या की भावनाओं को उत्तेजित करता है। वह उसके प्रति अपनी मूक श्रद्धा को छिपा न सका। यद्यपि राजलक्ष्मी किसी अन्य नारी से श्रीकान्त के भावी विवाह पर मिथ्या हर्ष प्रकट करती है, तथापि इससे उसे गहरी ठेस पहुँचती है। उसके मन के विचित्र संघर्ष का कहानी में सजीव चित्रण हुआ है। अपने रिक्त जीवन को भरने के लिए वह अपनी सामाजिक स्वतंत्रता के होते हुए धर्म के बाह्याचारों के प्रति महान आस्था प्रकट किए बिना नहीं रहती। विधवा और 'पतित नारी' होने पर भी

वह अपनी आंतरिक शुद्धता को कभी नहीं खोती। यह कदाचित् उसके अतीत के प्रायश्चित्त अथवा उसके शून्य अन्तर की पूर्ति का प्रयास है। राजलक्ष्मी का चरित्र लेखक की कला और जीवन के प्रति दृष्टिकोण का आधार है। वह उनकी कृतियों में लगभग सभी नारी-चरित्रों की रूप-रेखा है। मिथ्या अभिमान एवं अहंकार के होते हुए वह अपने बालपन के स्नेह के पात्र (श्रीकान्त) को पाने के लिए अपना सर्वस्व लुटा देती है। नारी का जीवन वास्तव में प्रेम पर टिका हुआ है। प्रेम को पा कर वह सब कुछ पा लेती है। राजलक्ष्मी उन सभी नारियों की प्रतीक है जो प्रेम के लिए लालायित रहती हैं, जिसका उनके लिए निषेध है।

श्रीकान्त के मानसिक अनुभव के प्रथम दो चक्र क्रमशः विशुद्ध अन्तःप्रेरणा और परंपरा के रूप में पूर्ण हुए। इन्द्रनाथ और अन्नदा दीदी जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण को निर्धारित करते रहते हैं जिसे वह राजलक्ष्मी (जो उसके प्रेम की केंद्र है) के प्रति अपने व्यवहार में प्रकट करता है। अब वह अपने जीवन का एक और स्मरणीय अनुभव प्राप्त करने को है। इसका अगला 'दृश्य बर्मा में घटता है, जो स्वच्छंदता तथा सामाजिक अराजकता का देश है। अभया, जो अपने क्रूर पति द्वारा परित्यक्त है, इस स्मरणीय अनुभव का आधार बनती है। वह मृत अतीत के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त होने से अन्तः-प्रेरणा और विद्रोह की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। श्रीकान्त के मन में उसकी स्मृति समाई हुई है जिसे वह अपनी शेष जीवन-यात्रा में ध्वनित करता रहता है। इस नारी के सम्पर्क में आने के बाद जिसमें सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध स्वतंत्रता की भावना साकार हो

उठी है, वह फिर से जीवन के परंपरागत मार्ग को अपना लेता है। वह वैष्णवों की मण्डली में मिल जाता है जहाँ उसकी भेंट एक लड़की से होती है जो असाधारण व्यक्तित्व और अद्भुत भक्ति को लिये है। कमललता ने, जो एक विधवा है, धर्म और समाज की वेदी पर प्रेम की बलि चढ़ा दी है। वह अतीत के परंपरागत मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। इन्द्रनाथ, अन्नदा दीदी, अभया और कमल क्रमशः अन्तः-प्रेरणा और परंपरा की शक्तियों के प्रतिनिधि हैं जो श्रीकान्त को उसकी जीवन-यात्रा में प्रभावित करती रहती हैं। इस प्रकार इस आत्मपरक उपन्यास की एक कलात्मक योजना तथा उद्देश्य है जो अनेक प्रासंगिक कथाओं और गौण पात्रों की भीड़ के नीचे दब गये हैं।

अपने निरुद्देश्य भ्रमण के बीच श्रीकान्त, जो उपन्यास का केंद्र है, अपने चहुँओर बहुत से गौण पात्रों को इकट्ठा कर लेता है। इन सभी गौण पात्रों का एक दूसरे से कोई संबंध नहीं है, जो है भी वह प्रधान पात्रों के द्वारा ही। प्रेम का प्रसंग उपन्यास के संगठन को बनाए रखता है जो अन्यथा अपने निर्माण में बहुत शिथिल है। राजलक्ष्मी को श्रीकान्त के प्रेम की सचाई पर विश्वास है। वह जानती है कि वह किसी अन्य नारी से प्रेम नहीं कर सकता। उपन्यास को सहज ही चार खण्डों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम खण्ड में नायक के भ्रमणों और द्वितीय में उसकी यात्राओं और जीवन के तरह-तरह के अनुभवों का विवरण है। तृतीय खण्ड में प्रेम का विकास और चतुर्थ में उसकी परिणति दिखाई गई है। अनेक अनुभव संचित करने और विविध नर-नारियों के सम्पर्क में आने के बाद श्रीकान्त अपने मन को सम्पन्न बना लेता है और उसमें जीवन के प्रति उदासीनता

एवं अनासक्ति की भावना जन्मती है । यह मध्यवर्गीय नायक की प्रमुख विशेषता है जो अपने उस सामाजिक वातावरण से निराश हो जाता है जिसने उसके हृदय को संकुचित बना दिया है और उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा पहुँचाई है।

उपन्यास के गौण पात्रों का पूर्ण विकास हुआ है यद्यपि वे अपने आप में पूर्ण नहीं हैं। गौहर एक कवि तथा दार्शनिक है जिसने वैष्णवों की संगत में रहने का निश्चय कर रखा है। वह वीतराग है तथा जीवन के भौतिक सुखों में लिप्त नहीं है। उसकी दादी एक फकीर थी और उसने इस प्रवृत्ति को उससे ग्रहण किया है । उसके पिता उसके लिए प्रचुर धन-सम्पत्ति छोड़ गए हैं, किंतु धन की उसे लालसा नहीं है। वह एक युवक है जो फकीर बन जाता है । कमललता के प्रति उसका स्नेह भी त्याग पर आधारित है। वह उस पर अधिकार करना नहीं चाहता। वह उससे प्रेम करती तथा उसकी सेवा करती है। वह प्रेम की अपेक्षा दया से प्रेरित हो कर उसकी सहायता करना चाहता है । जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण निषेधात्मक है । यह कदाचित् भारत की आध्यात्मिक परम्परा का परिणाम है । उपन्यास का एक और गौण पात्र स्वामी ब्रजानन्द भी धनी माता-पिता की सन्तान है । वह धन-सम्पत्ति की अत्यधिक अवहेलना करता है। यौवन को प्राप्त होते ही वह अपने समस्त वैभव को ठुकरा कर संन्यासी बन जाता है। राजलक्ष्मी के प्रति उसका अनुराग श्रीकान्त में ईर्ष्या जगाता है जिससे श्रीकान्त उसकी उपेक्षा करता है। इस पात्र ने जीवन के प्रति अपनी गूढ़ अनासक्ति से कवि रवीन्द्र को मोह लिया था। यह ऐसा आदर्श है जिसने धर्म तथा भक्ति के इस देश में महान आत्माओं को सदैव आकृष्ट किया है।

'श्रीकान्त' में प्रधानतया एक नायक के मानसिक अनुभवों का चित्रण है जो सामाजिक संघर्ष के युग में अन्तःप्रेरणा तथा परम्परा के बीच छटपटा रहा है। वह समाज की प्राचीन एवं नवीन व्यवस्था के संधिकाल में जीवन की पुरातन तथा परिवर्तनशील शक्तियों के बीच लटक रहा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, श्रीकान्त इस संघर्ष का प्रतीक है जो शरत् की कृतियों और कला का आधार है।

उपन्यास (द्वितीय श्रेणी)

शरच्चंद्र ने अपने उपन्यासों की द्वितीय श्रेणी में अपनी सृजनात्मक शक्ति का सर्वोत्तम परिचय दिया है। जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का व्यापक और गम्भीर हो जाना इस बात से प्रमाणित होता है कि उनके साहित्य के प्रथम रूप के बीच उनकी कला का विकास हुआ तथा चिन्तन में प्रौढ़ता आई। अब वे जीवन के दुःखों का प्रदर्शन करके ही नहीं रह जाते। दुःखी मनुष्य-जाति का दृश्य उन्हें मानवीय निराशा एवं पीड़ा की व्याख्या करने को प्रेरित करता है। उनके द्वितीय श्रेणी के उपन्यास सामाजिक उद्देश्य तथा सामाजिक आलोचना को लिए हुए हैं। वह तत्कालीन मध्यवर्गीय जीवन को अपने नैतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से परखना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने सामाजिक समस्याओं का अध्ययन गहरी सहानुभूति के साथ किया है। उपन्यासों में कई स्थलों पर वह सामाजिक अन्याय एवं उत्पीड़न से ग्रस्त प्राणियों के पक्ष में कोई भावपूर्ण उक्ति कहने में संकोच नहीं करते। कठोर वास्तविकताओं को देख लेने से उनका मन कड़ा हो गया है। ऐसा होते हुए वह कलात्मक निस्संगता और साहित्यिक संतुलन को बनाये रखते हैं।

'गृहदाह' जो उनके द्वितीय श्रेणी के उपन्यासों का प्रतिनिधि है, वस्तु-निर्माण तथा चरित्र-चित्रण का उत्कृष्ट नमूना है। अचला, सुरेश और महिम—तीनों प्रधान पात्रों ने अपनी जीवन-यात्रा आरम्भ की। सुरेश धनी, शिक्षित किन्तु पुराने विचारों वाला युवक था, जिसे समाज और उसकी परम्पराओं में विश्वास था। महिम निर्धन किन्तु शिक्षित

युवक था जो इतना सुसंस्कृत था कि तत्कालीन रूढ़िवादिता के साथ अपने विचारों के विरोध को दार्शनिक उदासीदता से ग्रहण कर सकता था। अचला अपने विधुर पिता की इकलौती बेटी थी। वह समाज तथा शिक्षा-सम्बन्धी नए विचारों वाले दुःखी पिता की प्रफुल्ल एवं चपल पुत्री थी। महिम ने अपने जीवन में दो अनमोल रत्न पाये थे। एक तो अचला थी जिसके साथ अपने निर्धन होने पर भी उसका विवाह होने वाला था; दूसरा सुरेश था जो धनी होते हुए भी उसका मित्र बना रहा। सुरेश ने उस स्थिति से अपने मित्र की रक्षा करने का निश्चय कर रखा था जिसे वह एक महान संकट समझता था। उसके मन में उस लड़की के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई जिसे उसने कभी देखा भी न था। सुरेश वैसे भी कभी किसी लड़की के सम्पर्क में नहीं आया था। महिम कहता कि वह अचला से प्रेम करता है और सुरेश इस पर हँस देता। सुरेश अपने मित्र को जीवन भर के संकट से बचाने के लिए निकल पड़ा। वह अचला से मिला। उसकी शीलता, शालीनता एवं कमनीयता ने उसे मंत्र-मुग्ध कर दिया। अपने मित्र को बचाने की उसकी अभिलाषा उस लड़की से स्वयं विवाह करने की कामना में परिणत हो गई। इसके अतिरिक्त लड़की के समझदार पिता केदार बाबू इस संयोग की कामना करने लगे जो उनके विचार में अपने आर्थिक संकट से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय था। वस्तुतः अपनी इकलौती बेटी के लिए एक सम्पन्न घर की व्यवस्था करने का विचार मात्र आने से उनमें कर्तव्य की भावना उदित हो उठी। महिम दार्शनिक था, अतः शान्त रहा। अचला ने अनेक बाधाओं के होते हुए उससे विवाह कर लिया। वह आधुनिक युवती थी और महिम आधुनिक युवक था।

अपने नए ग्रामीण घर में वैवाहिक जीवन में जम जाने पर उन्होंने अपने मित्र को भुला दिया और क्षमा कर दिया। प्रेम सभी विपदाओं, यहाँ तक कि गरीबी को भी सहन कर लेता है। अचला ने प्रसन्न मुख से विपत्ति का आँलिंगन किया; परन्तु वह महिम की चचेरी बहिन मृणाल को जो एक वृद्ध की पत्नी थी, सहन न कर सकी। अपने चचेरे भाई महिम के साथ उसकी सरल बातचीत और हास-परिहास अचला को अशान्त एवं ईर्ष्यालु बना देते। इसकी निर्दोषता को स्पष्ट करने के स्थान पर महिम मौन एवं दार्शनिक ढंग से शान्त रहा। इसने अचला के अहंकार पर चोट की और उसकी ईर्ष्या को उभाड़ा। प्रचण्ड वायु के झोंके उस छोटे से घरौंदे को झकझोरने लगे। सुरेश दुर्भाग्यवश अपने मित्र के घर पहुँचा और अचला ने उसके भीतर सहानुभूति पाई।

एक रात महिम के घर को आग लग गई और वह जल गया। महिम और अचला का घर तथा सुख खो गया। वह अपने पिता के घर लौट आई, किन्तु महिम ने अपने गाँव को छोड़ना अस्वीकार किया। महिम के प्रति अचला का प्रेम बुरी तरह दब गया, पर फिर उभर आया। महिम को रोग ने आ दबाया। सुरेश उसे गाँव से नगर में अपने घर ले आया। रुग्णावस्था में महिम ने अचला को अपनी रोग-शय्या के पास पाया। उसने रोगमुक्त होने के लिए किसी स्वास्थ्यालय को जाने का निश्चय किया और वह उसके साथ जाने को तैयार थी। सुरेश अभी तक विवाह-योग्य कुमार था और समझता था कि वह अचला से प्रेम करता है। उसने उसे पाने के लिए कमर कस ली। जब गाड़ी छूटने को थी, तो वह उनके साथ हो लिया, जिसमें दो प्रसन्न प्राणी एक बार फिर इकट्ठे यात्रा कर रहे थे। रात तूफानी और अँधेरी थी। महिम

शांत और प्रसन्न था। अचला अपने पति को पा कर उल्लास से भरी हुई थी। वह उसकी देखभाल कर रही थी। सुरेश की मनोदशा उनसे भिन्न थी। उसके भीतर तूफान उठ रहा था। वह उग्र भावों के साथ संग्राम कर रहा था। एक रेल-जंकशन पर गाड़ी पहुँची। पानी निरन्तर बरस रहा था। सुरेश ने अचला को गाड़ी बदलने के लिये कहा। वहाँ भीड़ और शोरगुल था। गार्ड सीटियाँ बजा रहे थे। इंजिन निर्दयता-पूर्वक धुआँ उगल रहे थे। सुरेश ने अचला की आँखों में धूल झोंक दी। वह उसे भगा कर ले आया। उसने अपने मित्र के साथ विश्वास-घात किया। महिम जीवन-यात्रा के लिए अकेला चल पड़ा—इस विनाश से अपरिचित, मित्र के विश्वासघात से अनजान, पत्नी की सरलता से अनभिज्ञ। अचला ने अनुभव किया कि उसके पति का मित्र उसे भगा कर ले आया है। उसने अपने-आप से पूछा—'क्यों',—और गाड़ी के बाहर वायु हुंकार कर उसका उपहास करने लगी। वह एक 'पतित नारी' थी।

सुरेश ने देर में अपनी भूल को अनुभव किया। उसने अचला को पहले ही सदाचार के पथ से विचलित कर दिया था। वह निढाल हो गया और उसने मृत्यु के अंचल में विश्राम खोजा। अचला और महिम अपनी जीवन-यात्रा को जारी न रख सके। वे श्रांत तन और क्लांत मन से चलते ही गए। विधि ने एक बार फिर दो राहों को काटने का विधान रचा और फिर एक बार वे एक-दूसरे से सदा बिछुड़ जाने के लिए मिले।

'गृहदाह' वस्तु-निर्माण और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना है। सुरेश प्रबल अधिकार-भावना से युक्त व्यक्ति है, जो अचला पर अधिकार जमाने के बाद उससे छुटकारा पाना चाहता है। वह भावनाओं

के प्रवाह में बहने वाला है। वह अचला के रूप एवं सौंदर्य पर मुग्ध है। इस सौंदर्य का पान कर लेने पर वह उससे दूर होने लगता है। सहसा वह मध्यवर्गीय समाज के आधारभूत मूल्यों को परखने लगता है। उसका नव-जात विवेक उसे सचेत करता है। यद्यपि वह सर्वथा नास्तिक, असामाजिक तथा अधार्मिक है, तथापि मानवता एवं सद्भावों से शून्य नहीं है। निःसन्देह उसने अपने मित्र की पत्नी को भगा कर अपने मित्र के साथ विश्वासघात किया, फिर भी उसने अनुभव किया कि यह सब सदाचार के विरुद्ध था। उसकी आत्मा उसे कोसती थी। इसी भावना ने उसे अपने मित्र को बचाने के लिए प्रेरित किया था। स्वभाव से उग्र, कामुक और अविश्वसनीय होने पर भी उसमें प्रेम के लिए आत्म-त्याग करने की शक्ति थी। वह असंगतियों का पुतला है। भ्रष्टाचारी होते हुए वह परम त्याग करने में समर्थ था। उसके भाग्य की विडम्बना यह है कि प्रेम के एक स्पर्श से उसका जीवन पावन नहीं बन पाया। उसका व्यक्तित्व दुर्भाग्य से अवरुद्ध एवं दबा हुआ है और इसी अविकसित व्यक्तित्व के कारण उसका जीवन दुःखमय है। उसके भीतर प्रेम की चाह समाई हुई थी; और जब उसने अपने प्रेम-पात्र को पाया तो अनुभव किया कि यह एक भूल थी। उसके चरित्र का रूपान्तर पश्चात्ताप की वेदना का परिणाम है। उपन्यास के अन्य पात्र साधारण हैं; अकेला वही महान है। ज्योंही उसने अपनी भूल अनुभव की, उसने मृत्यु का आह्वान किया जो उन्हें अलग कर दे। उसने धर्म का सहारा लेने का कभी प्रयास नहीं किया; किंतु रोग-ग्रस्त प्रदेश की ओर उसके प्रस्थान को आत्महत्या का प्रयास नहीं समझ लेना चाहिए।

जहाँ तक महिम का सम्बन्ध है, वह पूर्ण रूप से स्थिर स्वभाव का

व्यक्ति था। वह चिन्ता और उग्रता दोनों से मुक्त था। उसके जीवन के संकट के सभी क्षणों में प्रेम और साहस की धारा निरन्तर बहती रहती थी। स्वभाव और शिक्षा से वीतराग महिम प्रत्यक्ष रूप से कभी अशांत अथवा उद्विग्न नहीं होता था। मृणाल की चपलता और कमनीयता उसकी मानसिक शान्ति को भंग नहीं कर सकती थी। अचला ने उसके साथ अपने विवाह के प्रति असंतोष प्रकट किया, किंतु इसने भी उसके मन को अस्थिर न होने दिया। न उसने अचला को जानने का प्रयास किया। उसने उसकी शिकायतों की उपेक्षा की और वह अपने आप में मग्न रहा। वह अपनी पत्नी की अपेक्षा अपने में, अपनी कला और चिन्तन में अधिक लीन रहता। परिणाम-स्वरूप वह उसके प्रति उदासीन रहता। वह चाहती थी कि महिम उसके प्रति प्रेम तथा आदर प्रत्यक्ष रूप से दिखाए। उसने उसकी चाह को ठुकरा दिया और इसका परिणाम दुःखमय निकला।

अचला का चरित्र अत्यधिक उलझा हुआ है। उसके जीवन में एक विचित्र स्थिति उठ खड़ी होती है। उसका व्यक्तित्व द्विधा-ग्रस्त है। वह पति के प्रति आदर और उसके मित्र के लिए प्रेम के बीच डाँवा-डोल है। सुरेश उसकी कामनाओं तथा उसके प्रेम को साकार बनाता है। वह जानती थी कि वह एक अविश्वसनीय मित्र, उग्र व्यक्ति और एक अन्य पुरुष की पत्नी का प्रेमी है। फिर भी वह उसकी सहानुभूति और स्नेह के कारण उससे प्रेम करती थी। उसे प्रेम के कटु परिणाम का सामना करना पड़ा। बाद में उसने अनुभव किया कि तीव्र भावों के प्रवाह में बह जाना एक भूल थी। इससे उसका हृदय शून्य हो गया। उसके मन में अपने पति के लिए सच्चा आदर था, किंतु वह

यह अनुभव करने को बाध्य थी कि वह वास्तव में उससे प्रेम नहीं करता। कुछ भी हो, उसके मन में अवश्य ही यह विचार उठा होगा कि सामाजिक नियम असंगत हैं। अचला में एक लम्पट तथा आवारा (सुरेश) को बदल देने की क्षमता थी। वह उसकी सुषुप्त श्रेष्ठता एवं महानता को जाग्रत करने में समर्थ थी। यद्यपि उसे भगाया गया था, जिसे उसके चरित्र के रक्षणार्थ एक घटना का रूप दिया गया है, फिर भी वह इसके लिए सर्वथा अपराधिन नहीं ठहराई जा सकती। देहात के प्रति अरुचि, मृणाल से ईर्ष्या और महिम की उपेक्षा उसके भगाए जाने के कारण हैं। उसने अपने पति के प्रेम को पाने का प्रयत्न किया, किन्तु सुरेश बीच में आ गया। शरत् ने अचला के मानसिक संघर्ष को अनोखे ढंग से चित्रित किया है। उन्होंने पैनी दृष्टि तथा कल्पना शक्ति के द्वारा नारी-हृदय की गतिविधि का चित्रण किया है।

इस उपन्यास की रचना निर्दोष है। शरत् ने प्रधान विषय से पाठक का ध्यान विचलित करने के किसी भी प्रयास के बिना मन की स्थितियों का निरूपण किया है। यह एक ही दिशा में चलने वाला उपन्यास है जिससे लेखक की निर्दोष रचना शक्ति झलकती है। इसकी कथावस्तु का निर्माण संतुलित एवं व्यवस्थित है। अचला का भाग्य कथा के अन्त तक उत्सुकता एवं जिज्ञासा की भावना को बनाए रखता है। यद्यपि कहानी में अनेक आकस्मिक मोड़ हैं, फिर भी ये विचित्र मोड़ उसे रोमांचकारी नाटक नहीं बनने देते। कथा की चरम सीमा को लक्षित करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा उत्तेजक दृश्य को कलात्मक ढंग से निभाया गया है। संयोग उपन्यास के मूल्य को कम

नहीं करते। शरत् सदैव बाह्य वातावरण के प्रति पात्रों की मानसिक प्रतिक्रिया पर बल देते हैं। सामाजिक समस्या तथा शाश्वत प्रेम-समस्या को खड़ा तो किया गया है, लेकिन इस उलझी हुई समस्या को सुलझाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। शरत् अपने साहित्यिक संतुलन को बनाए रखते हैं। अंत में ऐसा जान पड़ता है कि यह उपन्यास लेखक की कला एवं प्रतिभा की राज-रचना है।

'चरित्रहीन' भी चरित्र-चित्रण की व्यापकता तथा गहराई के कारण एक महान रचना है। इसमें जैसे जीवन का विशाल तथा असीम सागर लहरा रहा है। ऐसा जान पड़ता है मानो शरत् ने पात्रों के सृजन और मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण में अपनी आत्मा को ही उंड़ेल दिया है। उपन्यास में दो प्रसंग साथ-साथ चलते हैं जो दो विधवाओं के जीवन तथा चरित्र पर केन्द्रित हैं। सावित्री और किरण जो सामाजिक अन्याय की शिकार हैं, इन दोनों प्रसंगों की केन्द्र हैं। सावित्री एक पवित्र विधवा है जो परम्परा में आस्था रखने के द्वारा अपने मानसिक संघर्ष को शान्त करने में समर्थ है। उसे एक महान नारी के रूप में दिखाया गया है जिसमें प्रेम, सेवा और त्याग की भावना साकार हो उठती है। यद्यपि वह एक छात्रों के 'मेस' में नौकरानी है और विधवा है, तथापि मन की निष्कपटता और चरित्र की निर्दोषता को असाधारण रूप में बचाए रखती है। उस विधवा के पास पहले ही तीन व्यक्ति अपने प्रेम-प्रस्ताव को ले कर आ चुके हैं। वह प्रलोभन को दूर रखती है, और इस प्रकार सतीत्व के आदर्श की रक्षा करती है। सतीश, जो 'मेस' का एक सदस्य है, उसकी सुकुमार देखभाल, ममता और शालीनता पर मुग्ध है। उसके निकट सम्पर्क में आने पर वह लापरवाह छात्र और भी लापरवाह हो

जाता है। सावित्री उसके सरल शिशु-स्वभाव को भाँप लेती है और एक अनोखी सुकुमारता और प्रेम के साथ उसकी देखभाल करने लगती है। इस प्रकार उसे अपनी सहज वात्सल्य-भावना की पूर्ति का अवसर मिलता है। होनी हो कर रहती है। वे एक-दूसरे से गहरे स्नेह में बँध जाते हैं। सतीश यह जान कर व्यथित हो उठता है कि सावित्री एक विधवा है जिसके लिए प्रणय एवं परिणय का निषेध है। वह अपनी सच्चरित्रता का त्याग नहीं कर सकती। यह उसके जीवन की श्रेष्ठतम निधि है। उसके भीतर प्रेम तथा कर्तव्य के बीच संघर्ष हो रहा है। उपन्यास में इस संघर्ष का विलक्षण चित्र खींचा गया है। वह न तो सतीश को पा सकती है और न ही उसे छोड़ सकती है। सतीश हर घड़ी उसके मन में समाया रहता है जो अन्यथा शून्य है और प्रेम से पूर्ण होने के लिए आतुर सतीश के प्रति स्नेह होने से वह अपने हृदय के गहरे रिक्त-स्थान को भरने में सफल होती है। दोनों के लिए स्थिति कष्टकर है। सतीश समाज-द्रोही है। वह प्रेम के लिए परम्परा के प्रति विद्रोह कर सकता है। सावित्री का जीवन के प्रति दृष्टिकोण नितान्त परम्परा-सम्मत है। अतएव वह अपनी कामनाओं को उसके प्रति आत्मिक प्रेम में परिणत कर लेती है। सतीश सुरापान करके अपनी चिन्ता को भुलाने का प्रयास करता है। वह रात को देर में लौटना आरम्भ कर देता है। सावित्री इस पर उद्विग्न हो उठती है। यदि वह उसे न रोके तो उसके आवारा बन जाने की संभावना है। वह किसी तरह उससे यह वचन ले लेती है कि वह अपनी इस बुरी लत को छोड़ देगा। जैसे ही उनके भीतर अतृप्त प्रेम की भावना गहरी हो जाती है, वे एक दूसरे से वियुक्त हो जाते हैं और सुरेश की बीमारी में उनका

पुनर्मिलन होता है। बूढ़ा स्वामि-भक्त नौकर बिहारी उन दोनों के मेल की कड़ी है।

एक अन्य धारा जो इसके साथ-साथ बहती है, एक और विधवा के जीवन और समस्याओं से सम्बन्धित है। वह उपन्यास की केन्द्र है। किरण, जिसने अपनी मानसिक भूख को उन्नीसवीं शताब्दी के स्वतन्त्र चिन्तन और दर्शन से मिटाया है, एक जीवन-मुक्त नारी है। वह स्वभाव से दूसरों पर छा जाने वाली है। यह स्वभाव कदाचित् उसके निराश, स्नेह-हीन और दुःखी जीवन का पूरक है। उसने हाल ही में अपने पति को खो दिया है जो उसकी आशाओं एवं अभिलाषाओं के प्रति उदासीन था। वह उसके लिए गुरु अधिक है, पति कम। किरण स्नेह की भूखी है, किन्तु इसके स्थान पर उस पति से दर्शन के उपदेश मिलते हैं। उसके पति का देहान्त उसके जीवन को और भी शून्य बना देता है। वह एक डॉक्टर से प्रेम करके, जो उसके रोगी पति का इलाज करता था, अपने शून्य जीवन को भरने का प्रयत्न पहले ही कर चुकी है। अपनी प्रेम की भूख मिटाने का यह उसका प्रथम प्रयास है। उसके मन में पुरुष का प्यार पाने की उत्कट अभिलाषा समाई हुई है। उपेन्द्र उसके प्रेम का दूसरा पात्र है। वह आगे ही एक विवाहित पुरुष है, अतः वह उसकी वासना की पूर्ति नहीं कर सकता। वह उसे अपनी बहन समझता है जिसे पति की मृत्यु के बाद देख रेख एवं सुरक्षा की आवश्यकता है। किरण को उसके व्यवहार से गहरा आघात पहुँचता है। इस मनःस्थिति में उसे उपेन्द्र के अविवाहित चचेरे भाई के साथ रहना पड़ा जिसे कालेज में पढ़ना है। उपेन्द्र के मन में अपने भाई दिवाकर के लिए गहरा स्नेह है। वह उसके जीवन

की श्रेष्ठतम निधि है। जैसे ही वह किरण के निकट सम्पर्क में आता है, वह उसकी कुशाग्र बुद्धि और विद्रोही प्रकृति पर मुग्ध हो जाता है। वह उसे तर्क-वितर्क और वाद-विवाद से प्रभावित करती है। वह उन सब नारियों से अधिक प्रतिभा-सम्पन्न है जो उसके जीवन में उसके सम्पर्क में आई हैं। वह उसकी प्रखर प्रतिभा और चौंधियाने वाले विवेक के सामने फीका पड़ जाता है। किरण को केवल सामाजिक संसर्ग से संतोष नहीं मिलता; बौद्धिक संसर्ग से भी वह संतुष्ट नहीं होती। वह उस अविवाहित युवक को भगा ले जाना चाहती है। इससे दो कार्य सिद्ध होते हैं। प्रथम, वह अपनी प्रेम की भूख को मिटा सकेगी। इसके अतिरिक्त वह उपेन्द्र से उसके भाई को छीन कर जो उसे बहुत प्रिय है, उससे बदला ले लेगी। दिवाकर झिझकता है। वह उसके साथ भाग जाने के लिए राज़ी नहीं है। किरण दूसरों पर छा जाने वाली नारी है। वह उससे अपनी इच्छा पूर्ण करना चाहती है। वह उसके उद्दाम भावों से परास्त हो जाता है। दोनों बर्मा जाने वाले एक जहाज पर चढ़ बैठते हैं। यह देश ऐसे व्यक्तियों का आश्रय-स्थान है। इस मादकता और विलासिता के नशे में वह अनुभव नहीं करता कि एक विधवा के साथ भागने का क्या परिणाम हो सकता है। किरण अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेती है। वह उल्लास से परिपूर्ण है। वह इस बात से अनभिज्ञ है कि उसे दुःखद परिणाम का सामना करना है। यह उसका नाश कर देगा। यह उसका सामाजिक और आत्मिक मरण है। वास्तव में न उसमें आत्मिक गम्भीरता है और न ही उसका आत्मिक जीवन है। भावों का बवंडर उसे सदैव उड़ा ले जाता है। वह कभी भी निष्कपट प्रेम से अनुप्राणित नहीं होती है। वह केवल काम-भावना से

प्रभावित होती है; और काम-भावना का क्षय एवं मरण निश्चित है। किरण और दिवाकर वैवाहिक जीवन के कुछ काल बाद एक दूसरे से विमुख हो जाते हैं। शरत् ने उनके जीवन की जड़ता तथा शून्यता का विशद चित्रण किया है—वह जीवन जो मरण से भी बुरा है। यद्यपि बर्मा में आश्रय खोज लेने से वे सामाजिक लांछन से बच निकलते हैं, फिर भी उनकी अंतरात्मा उन्हें कोसती ही है और अपराध की चेतना उन्हें कोंचती रहती है। उनके बीच एक विस्तृत खाई बढ़ने लगती है। इस संकट की बेला में सतीश उन्हें वापिस लाने को आ पहुँचता है। किरण की घर लौटने की इच्छा नहीं है। उपेन्द्र की गम्भीर बीमारी और निकट अवसान को जान कर वह उसके साथ जाने को तैयार हो जाती है।

इस बीच में सतीश और सावित्री का मिलन होता है और सावित्री उसे मद्यपान से विमुख कर देती है। उसका गम्भीर तथा निष्कपट प्रेम सतीश पर जादू का असर डाल देता है। उसके आचार-व्यवहार में मूल परिवर्तन आ जाता है। सावित्री एक विधवा है; वह उसके साथ विवाह नहीं कर सकती। उपेन्द्र एक अन्य नारी सरोजिनी के साथ सतीश का विवाह कर देता है जिसे वह घुमक्कड़ अपने भ्रमण के दौरान में मिला था। यह प्रसंग कहानी की सबसे निर्बल कड़ी है, किंतु इसे कहानी का अंत करने के लिए जोड़ा गया है। मृत्यु-शय्या पर उपेन्द्र उपन्यास की सभी उलझनों को सुलझा देता है। दिवाकर को उस नारी से विवाह करना होगा जिसे उपेन्द्र और उसकी स्वर्गीय पत्नी ने उसके लिए निश्चित कर रखा है। किरण पागल हो जाती है। उसके लिए शायद यही चारा रह गया था। उसकी अपनी ही तीक्ष्ण

बुद्धि और अत्यधिक भावुक प्रकृति उसके नाश का कारण बनती है। उसके व्यक्तित्व का क्रमिक ह्रास उसके आत्मिक जीवन के अभाव से लक्षित होता है। सावित्री कभी चरित्र-हीन नहीं हुई। किरण को जब भी अवसर मिला, उसने अपने-आप को भावों में बह जाने दिया। डॉक्टर अनंग मोहन, उपेन्द्र और दिवाकर उसकी कामुकता के शिकार थे। उपेन्द्र उसके फंदे से बच निकला, किंतु उसने उसके भाई दिवाकर के जीवन का नाश करके उससे बदला लिया। प्रेम के स्पर्श से वह पावन नहीं बन पाई। अतएव वह आत्मिक शिखर तक नहीं पहुँच सकती। उसमें आत्मिक जीवन और मानसिक संतुलन का अभाव है।

व्यसनमय जीवन के होते हुए सतीश को सभी लोग जो उसके सम्पर्क में आए, प्रखर प्रतिभा और अपार क्षमता से सम्पन्न मानते थे। वह उन लोगों में से है जिनके चरित्र की महानता संकट के समय जानी जाती है। उसमें महानता के बीज विद्यमान हैं। सावित्री उसकी पथ-प्रदर्शक और उसकी सद्भावना का मूल स्रोत है। उसके चरित्र के रूपान्तर का श्रेय इस असाधारण नारी के पावन प्रभाव को है जो महान आत्म-त्याग और वैराग्य की क्षमता रखती है। निराशा और व्यर्थता का जीवन उसके सामर्थ्य को नष्ट कर देता है। अपनी प्रेयसी के स्थान पर एक अन्य नारी से विवाह करने की अपेक्षा उसके लिए मर जाना अच्छा था। ऐसा होते हुए समाज की मध्यवर्गीय रूढ़ियों के कारण उसका व्यक्तित्व अविकसित तथा अवरुद्ध रहता है। देवदास, जीवानंद, सुरेश और सतीश—सभी में महानता के बीज विद्यमान हैं। वे एक ही धातु के बने हुए हैं, एक ही समाज-व्यवस्था की उपज हैं। उपेन्द्र एक रूढ़िवादी पति, स्नेहशील भाई और विश्वसनीय मित्र है,

सुरबाला परंपरा-प्रिय नारी है जिसने अपने आप को स्वामी की सेवा के प्रति अर्पित कर रखा है; सरोजिनी एक सामान्य वधू है जिसकी उद्भावना का उद्देश्य उपन्यास की एक उलझन को सुलझाना है। शची भी एक ऐसे ही रिक्त-स्थान की पूर्ति करती है, और दिवाकर एक दुर्बल-चित्त प्राणी है जिसे तीव्र भावों के झोंके उड़ा ले जाते हैं। सतीश, सावित्री और किरण प्रधान पात्र हैं जो ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के प्रतिरूप हैं। उनके जीवन की निराशा एवं व्यर्थता अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है और उस समाज-विधान पर प्रकाश डालती है जो मानवीय साहस और व्यक्तित्व के विकास को नष्ट कर देता है।

'बाह्मन की बेटी' एक सशक्त उपन्यास है जो इस बात को चित्रित करता है कि किस तरह ग्रामीण समाज में धर्म-सम्बन्धी मूढ़ विश्वास, अज्ञान और जात-पात प्रेम को असफल और जीवन को दूषित बना देते हैं। इस दृश्य की घटना देहात में होती है जहाँ कोई भी व्यक्ति अपने से नीची जाति वालों के साथ खान-पान नहीं कर सकता। अपवित्रता का एक सामान्य कलंक नीची जातियों के साथ जुड़ा रहता है। इसे अनेक रूपों में देखा जा सकता है। कोई उच्च जाति का व्यक्ति किसी नीच-जाति के व्यक्ति के स्पर्श से दूषित हो सकता है। उसे फिर से पवित्र बनने के लिए विधिपूर्वक स्नानादि करना आवश्यक है। धार्मिक पवित्रता को सुरक्षित रखने की आवश्यकता में विश्वास उन लोगों के सामाजिक बहिष्कार के लिए उत्तरदायी है जो उच्च जाति के होते हैं और समुद्र पार यात्रा के लिए जाते हैं। उनके लिए जहाज़ पर अथवा विदेश में खान-पान के रूढ़िगत नियमों का पालन करना कठिन हो जाता है। सप्ताह के एक विशेष दिन रस्सी को लाँघने के सम्बन्ध में एक

धर्म-सम्बन्धी वहम से कहानी का आरम्भ अत्यधिक महत्वपूर्ण है; क्योंकि यह छोटी-सी घटना ग्रामीण-समाज के जीवन पर प्रकाश डालती है।

सन्ध्या एक बीस वर्षीय लड़की है जो यौवन और लावण्य से सम्पन्न है, तथा जिसने रस्सी का उल्लंघन करके एक वृद्धा के रोष को जागृत किया है। यह वृद्धा उस प्राचीन समाज व्यवस्था की प्रतिरूप है जिसमें इस तरह के वहम पाए जाते हैं। वह उस मुहल्ले में जहाँ यह घटना घटती है, तूफान खड़ा कर देती है। वह बालकों की शिक्षा के विरुद्ध है क्योंकि इससे उनके धार्मिक विश्वासों का खंडन और समाज के मूलाधार का नाश होता है। सन्ध्या के माता-पिता के लिए उसका विवाह एक गम्भीर समस्या है। उसका पिता एक डाक्टर है जो अपने रोगियों के लिए कोई उपचार ढूँढ़ने के पीछे पागल बना रहता है। वह अपनी डाक्टरी में जिससे उसे विशेष लाभ नहीं होता, इतना व्यस्त रहता है कि उसे अपनी लड़की के विवाह का प्रबन्ध करने का भी अवकाश नहीं मिलता। उसकी पत्नी उसकी इस लापरवाही तथा उदासीनता से तंग आ जाती है। वह तंग आ कर उसे छोड़ जाने की धमकी देती है। गाँव का मुखिया गोलक एक विधुर है जो सदा धर्म की विधियों में लीन रहता है। वृद्धा रासमणि उसके पास इस आस को ले कर आती है कि वह युवती लड़की के लिए कोई योग्य वर ढूँढ़ दे। इसी बीच अरुण, जो उदार विचारों वाला नवयुवक है और हाल ही में विदेश से लौटा है, उस लड़की से भेंट करता है। यही नहीं, वे एक दूसरे को प्रबल रूप से चाहने लगते हैं। गाँव के दम घोंटने वाले वातावरण में उनके प्रेम के परिणाम का अनुमान लगाना कठिन नहीं

है। गोलक, जिसे लड़की के लिए वर खोजने का काम सौंपा गया है, अपने को ही उसके लिए उपयुक्त वर के रूप में पेश करता है। इस प्रकार प्रेम की चिरन्तन समस्या उठ खड़ी होती है। इसका परिणाम होता है प्रेम की पूर्ण असफलता और जीवन में निराशा। गोलक जो आगे ही अपनी भाभी के प्रति आसक्त है, सन्ध्या के साथ विवाह नहीं कर सकता। अरुण को समुद्र-पार यात्रा करने के कारण समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है और उसे निराश हो कर गाँव छोड़ जाना पड़ता है। संध्या का विवाह होना ही होगा, चाहे उसका वर छिछले आचरण का ही क्यों न हो। उसका विवाह एक उच्च-जाति के पुरुष के साथ होने ही वाला था; लेकिन उसकी ससुराल के लोगों को जब यह पता चलता है कि वह उच्च जाति की होने के स्थान पर नाई की लड़की है तो वे लौट जाते हैं। यह उसे जीवन भर लांछित करने के लिए पर्याप्त है। कथा में एक अत्यन्त विकट स्थिति उठ खड़ी होती है। अरुण को अस्वीकृत कर दिया जाता है क्योंकि वह जन्म से नीच-जाति का है। संध्या का जीवन नष्ट हो जाता है, क्योंकि दैवयोग से वह डॉक्टर की लड़की न हो कर एक नाई की लड़की निकलती है। डॉक्टर के परिवार के लिए बनारस की पुण्य भूमि के अतिरिक्त कोई अन्य आश्रय-स्थान नहीं रह जाता जहाँ, जैसा कि उपन्यास में दिखाया गया है, वह अन्त में प्रस्थान कर देते हैं।

शरच्चन्द्र ने प्रधान कथा में गाँव के मुखिया की गौण कथा को गूँथ दिया है। उसके धार्मिक आचार-अनुष्ठान उसके अधार्मिक जीवन के सर्वथा विपरीत हैं। वह अपने कुत्सित आचरण से अपनी भाभी की लाज को कलंकित कर देता है जो एक विधवा है और उसके साथ एक

ही घर में रहती है। जैसे ही उसे अपने गर्भवती होने का पता चलता है, वह आत्महत्या करने का निश्चय कर लेती है। गोलक उसे उसकी व्यथा एवं लज्जा को ढकने के लिए पचास रुपये दे कर अपने घर से निकाल देता है। रेलवे स्टेशन पर उसे डॉक्टर के परिवार के साथ देख कर मन व्यथित हो उठता है। ये सभी सामाजिक अन्याय एवं अत्याचार के शिकार हैं और उनका किसी तीर्थ-स्थान को प्रस्थान करना अनिवार्य है जो समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों का निश्चित आश्रय-स्थान है। उपन्यास में सर्वत्र असहायता और निराशा का वातावरण छाया हुआ है। पात्र उन सामाजिक शक्तियों के असहाय शिकार हैं जो मध्यवर्गीय घेरे में लोगों का दम घोंटने वाली हैं। उनके लिए एक ऐसे वातावरण में विकसित होना सम्भव नहीं है जो उनके मन को संकुचित तथा विकृत बना देता है।

उस लड़की का पिता प्रियनाथ एक सीधा-सादा प्राणी है। वह हर समय अपने रोगियों के लिए उपचार ढूँढने में ही व्यस्त रहता है। वह अपने लिए जिस काल्पनिक जगत का निर्माण करता है, वही उसके दुःख का कारण बनता है। वह जीवन की कठोर वास्तविकताओं से अलग रहता है। समाज से अलग रहने से उसका सर्वनाश हो जाता है। सन्ध्या और अरुण को निरन्तर दुःख एवं पीड़ा का जीवन बिताना पड़ता है। लेखक ने असाधारण संयम और गहराई के साथ उनके असफल प्रेम का चित्रण किया है। संध्या अपने प्रेम को तभी प्रकट करती है जब उसकी माँ अरुण को अपने यहाँ आमंत्रित करने का आग्रह करती है। वह इसमें बाधा पहुंचाती है। जिससे कि वह अपने को उसके माता-पिता द्वारा अपमानित अनुभव न करे। गाँव के मुखिया

गोलक पर उसके पाखण्ड, स्वार्थपरता और धार्मिक ढोंग के लिए निर्मम व्यंग्य कसे गए हैं। उसके बाह्याचरण और मानसिक गतिविधि के बीच मूल विरोध को ऐसे लोगों के थोथेपन पर बल देने के लिए दिखाया गया है। शिवनाथ और गोलक के चरित्र को एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए जान बूझ कर बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है। रासमणि जो लकीर की फकीर नारी है, चरित्र-चित्रण की राज-रचना है। उसे समस्त वहमों, मूढ़ विश्वासों, असंगतियों और विषमताओं से युक्त ग्रामीण जीवन की विलक्षण जानकारी के साथ अंकित किया गया है। उपन्यास का सामाजिक उद्देश्य उच्च-जाति में जन्म लेने के थोथेपन और मध्यवर्गीय समाज में ऐसे अधिकारों की निस्सारता का भंडाफोड़ करना है, जिसने कितने ही लोगों का सुख कुचल डाला है।

'अरक्षणीया' में यह दिखाया गया है कि साधारणतया किसी युवती लड़की का विवाह करना कितनी जटिल समस्या है, इस पर भी जब उसके माता-पिता निर्धन हों और लड़की काले रंग की हो। ज्ञानदा का पिता एक गरीब क्लर्क था जिसका मासिक वेतन तीस रुपये था, अतः उसमें अपनी बेटी का विवाह करने का सामर्थ्य नहीं था। वह हतभागा अपने जीवन और क्रूर जगत को कोसने के अतिरिक्त कुछ न कर सका। ऐसा होते हुए एक दिन वह अपनी चिंताओं को साथ लिए बिना किसी संस्कार के चल बसा। अपने पीछे वह एक विधवा और एक जवान लड़की अतुल के संरक्षण में छोड़ गया जिसे उसने लड़की को व्याहने का वचन दे रखा था। जैसा कि ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक है, ज्ञानदा के सम्बन्धियों ने उसके और उसकी विधवा माँ के साथ दुर्व्यवहार किया और उन्हें तंग करने लगे। उन्हें अपने ही घर को छोड़ जाना

पड़ा। अतुल इसमें हस्तक्षेप न कर सका क्योंकि वह नगर को जीविका की खोज में चला गया था जो उसे बड़ी कठिनाई से मिली। वह शीघ्र ही अपने गाँव को चल पड़ा; और अपने उत्साह में वह उन अभागे प्राणियों को भूल गया। जब उसे यह पता चला कि ज्ञानदा अपनी माँ के साथ गाँव छोड़ कर अपने मामा के पास रहने के लिए चली गई है तो उसके अहंकार तथा गर्व को ठेस लगी। सम्भव है उन्होंने उसके वचन पर विश्वास न किया हो। उसने मन-ही-मन तर्क किया और उसे गहरी चोट पहुँची। तदनन्तर सभ्यता के केन्द्र—नगर—से माधुरी अपने आकर्षण तथा उल्लास को ले कर आई। माधुरी के माता-पिता ने अतुल के आगे माधुरी के विवाह का प्रस्ताव रखा। अतुल की माँ ने प्रस्ताव को स्वीकार किया। वह भी उसे चाहता था। वह ज्ञानदा को और अपने वचन को भूल गया। मामा के घर में उसका जीवन किसी भी प्रकार सुखी न था। वृद्ध मामा उसका विवाह एक बूढ़े विधुर से करना चाहते थे। इस विपदा से बचने के लिए माँ-बेटी अपने ही घर गैरों की तरह चली आईं। किसी ने भी उनका स्वागत न किया। अतुल के भावी विवाह का समाचार सुन कर उन पर मानो वज्रपात हुआ। दुःखी और रोगी माँ इस आघात से चल बसी। ज्ञानदा इस विशाल जगत में अकेली और असहाय रह गई। गाँव के कपटी और चौकन्ने निन्दकों ने पूरे जोश से अपना खेल शुरू कर दिया। वे सामाजिक सदाचार और धार्मिक पवित्रता के ठेकेदार थे। उनके विचार में इतनी बड़ी लड़की को अविवाहित रहने देना पाप था; यह मानवता और धर्म को दूषित करना था। उसका विवाह होना ही था जो उन्होंने एक साठ वर्ष के बूढ़े विधुर के साथ पक्का कर दिया जो आगे ही तीन विवाह कर चुका था। माँ की

मृत्यु के बाद उसने इस संकट से बचने के लिए अपने जीवन को समाप्त कर देना चाहा। उसके आत्म-हत्या के प्रयास से अतुल के हृदय को गहरी व्यथा पहुँची। उसने अपने पिछले पापों के लिए प्रायश्चित किया और अपने वचन की लाज रखी।

यह उपन्यास उस समाज-विधान की निर्मम आलोचना है जो धर्म और सदाचार के नाम पर इस अत्याचार का समर्थन करता है और इसे जारी रखता है। ज्ञानदा को विवाह की मंडी में एक पशु की भाँति खरीदा और बेचा जा सकता है। उसमें वह अमानवीय पीड़ा एवं यातना साकार हो उठती है जिसे समाज की ह्रासोन्मुख सामंतीय व्यवस्था में अनेक अविवाहित लड़कियों को सहन करना पड़ता है। इस सामाजिक समस्या को इसके नग्न रूप में दिखा कर शरत् ने ग्रामीण समाज में होने वाले अत्याचारों का भंडाफोड़ किया है। सम्भव है इस समस्या के महत्त्व और गम्भीरता पर बल देने के लिए इसका अति-शयोक्ति-पूर्ण विवेचन किया गया हो; परन्तु इसके अस्तित्व को अस्वीकार अथवा कम नहीं किया जा सकता। जीवन का चित्रण करने की अपेक्षा एक प्रबन्ध लिखने का प्रयास किया गया है; इसलिए यह उपन्यास कला के उस उच्चतम आदर्श तक पहुँच नहीं पाया जिसे लेखक ने अपनी पूर्व कृतियों में, जिनका विश्लेषण किया जा चुका है, सिद्ध किया था। समस्या का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन एवं चित्रण निःसंदेह उपन्यास को एक अत्यधिक भावात्मक रंग देता है; फिर भी यह सामाजिक उद्देश्य को क्षीण और इसके प्रभाव को हलका बना देता है। माँ का चरित्र दया को जगाने तथा आँसुओं को लाने के लिए तनिक बढ़ा चढ़ा कर दिखाया गया है। अतुल के चरित्र को उसके परिवर्तन और विकास

के बीच सचाई के साथ अंकित किया गया है, यद्यपि उसके मानसिक संघर्षों का चित्रण पाठक के मनोनुकूल नहीं हुआ। ज्ञानदा भारतीय लड़कियों की मौन व्यथा को मुखरित करती है और उसकी मूक वेदना का कहानी में सजीव चित्रण किया गया है। कथा के संक्षिप्त निरूपण के कारण चरित्रों का पूर्ण विकास नहीं हो पाया। उपसंहार को छोड़ कर उपन्यास में सर्वत्र गहन विषाद एवं पीड़ा का वातावरण छाया हुआ है। यह लेखक के जीवन के कटु अनुभव का परिणाम है। किसी कृष्ण-वर्ण की युवती के विवाह की समस्या समाज के मध्य-वर्गीय मूल्य को प्रतिबिम्बित करती है जिसका लेखक को निकट एवं गहरा परिचय है। 'अरक्षणीया' का एकमात्र उद्देश्य इस समस्या को प्रस्तुत करना है जिसे अन्य कई कहानियों में छुआ गया है। निम्न मध्यवर्गीय समाज में विवाह की जटिल समस्या को जिस मनोयोग से चित्रित किया गया है उससे यह उपन्यास अत्यन्त सशक्त बन पड़ा है।

'दत्ता' मध्यवर्गीय समाज में प्रेम और विवाह की समस्या से सम्बन्धित है। बनमाली, रासबिहारी और जगदीश—तीन घनिष्ठ मित्र और सहपाठी थे, जिन्होंने अपनी सन्तान के भविष्य के सम्बन्ध में अनेक मनसूबे बाँध रखे थे। उनमें जगदीश अपेक्षाकृत गरीब था। बन-माली के एक लड़की थी, रासबिहारी और जगदीश दोनों के एक-एक लड़का था। विजया, जो धनी माँ-बाप की लड़की थी, रूप और यौवन पा कर बड़ी होने लगी। रासबिहारी, जो एक धन-लोलुप जीव था, अपने मित्र की युवती एवं रूपवती बेटी के साथ अपने पुत्र का विवाह करके मित्र की समस्त सम्पत्ति को हथियाना चाहता था। जगदीश क्योंकि निर्धन था, अतः उसका लड़का उस लड़की

के विवाह के उपयुक्त नहीं हो सकता था। पचीस वर्षों के दीर्घकाल के बाद बनमाली ने, जो बूढ़ा हो गया था, किंतु अपनी बेटी का विवाह न कर सका था, उसे बताया कि उसने जगदीश को यह वचन दे रखा था कि वह उसके लड़के के साथ अपनी लड़की का विवाह करेगा। अपने पुत्र को विजया के साथ सुखपूर्वक वैवाहिक जीवन में स्थिर हुआ देखने की उसकी उत्कट अभिलाषा थी। जगदीश, जिसे अपनी पत्नी के देहान्त से गहरी चोट पहुँची थी, जुआरी, शराबी और कंगाल बन गया। विजया के पिता उसे कह गए थे कि वह उनके मित्र से वह धन लौटाने के लिए न कहे जो उसने अपने पुत्र की शिक्षा के लिए उधार ले रखा था। इन इच्छाओं को प्रकट कर चुकने पर बनमाली का देहान्त हो गया, और उनकी बेटी उन लोगों के बीच अकेली रह गई जिन्होंने इस विवाह-प्रस्ताव को निष्फल बनाने और उसकी समस्त सम्पत्ति को हथियाने के लिए विस्तृत जाल फैला रखा था। रासबिहारी ने, जो देखने में बड़ा साधु-स्वभाव का प्राणी था, अपने पुत्र को उससे ब्याह कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने की ठानी। उसके पुत्र विलासबिहारी ने विजया की देखभाल का और उसकी सम्पत्ति की व्यवस्था का भार अपने ऊपर ले लिया। उसने उसे विवाह के लिए मनाना भी आरंभ कर दिया। तभी उस गरीब का लड़का नरेन्द्र उसकी योजनाओं को अस्त-व्यस्त कर डालने के लिए आ पहुँचा। विजया के मन में उसके प्रति गहरा स्नेह पनपने लगा; लेकिन वह उसे व्यक्त करने में लजाती थी। नरेन्द्र उस बूढ़े लोभी जीव और उसके पुत्र की आँख का काँटा बन गया। विलासबिहारी लालची, बदले की भावना से युक्त, नीच, और चिड़चिड़ा प्राणी था। उसका पिता कपटी

जीव था, जो विजया की सम्पत्ति को हस्तगत करने के लिए उस पर स्नेह की बौछार करने लगा। बाप-बेटे ने उन दोनों के बीच खाई खोदने की चाल चली। उन्होंने विजया पर कलंक लगाने का प्रयास किया। नरेन्द्र कई बार आया-गया; किंतु विवाह की कोई बातचीत नहीं हुई। उसने जो 'माइक्रोस्कोप' विजया को दिया था, वही उसके प्रेम का साकार प्रकाशन और प्रतीक था। वह अपनी डाक्टरी की शिक्षा समाप्त करके एक सफल डॉक्टर बन गया था। उनके बीच वैमनस्य उत्पन्न करने का एक और प्रयास किया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने नलिनी का प्रसंग गढ़ लिया। विजया को जताया गया कि नरेन्द्र ने उस लड़की को विवाह का वचन दे रखा है। नरेन्द्र ने क्योंकि समय पर इसका प्रतिवाद नहीं किया, इससे विजया की आशंका दृढ़ हो गई। उनके बीच वैमनस्य पैदा करने के लिए विलासबिहारी के साथ विजया के विवाह की झूठी बात भी फैलाई गई। कालान्तर में सभी बाधाएँ दूर हो गई, भ्रम का आवरण हट गया और वे प्रणय एवं परिणय-सूत्र में बँध गए।

उपन्यास का सुखद अंत लेखक की लगभग सभी कृतियों में गूँज रहे अतृप्त प्रेम के स्वर का महत्त्वपूर्ण अपवाद है। विजया के मन में चाचा के लिए आदर और उस नवयुवक के प्रति प्रेम के बीच द्वन्द्व चल रहा था। जब तक उसे यह विश्वास न हो गया कि उसका चाचा स्वार्थी और धन-लोलुप है, उसने उसका परित्याग न किया। उसका लज्जाशील नारी-स्वभाव भी उसके लिए बाधक था, जिसने उसे अपने प्रेम को सीधे और स्पष्ट ढङ्ग से व्यक्त न करने दिया। उसे अपनी नारी-सुलभ लज्जा के कारण दुःख झेलना पड़ा। नरेन्द्र की उदासीनता

भी कुछ अंश में उसकी व्यथा का कारण थी। उनके प्रेम की राह में बाधा पहुँचाने वाला न धर्म था, न ही जाति, प्रत्युत अहंकार, लज्जा और उदासीनता बाधक थी जिसने उनमें एक दूसरे से खिंचाव पैदा कर दिया और उनमें मनोमालिन्य की सृष्टि की। उपन्यास का विधान संतुलित एवं व्यवस्थित है। इसमें मानव-व्यवहार की प्रेरणाओं और जीवन की विचित्र स्थितियों के प्रति मानसिक प्रतिक्रियाओं का यथार्थ चित्र खींचा गया है। चरित्र-चित्रण कुशलतापूर्वक किया गया है और मध्यवर्गीय परिवार में विवाह की समस्या को उपन्यास में सचाई के साथ दिखाया गया है। शरच्चन्द्र ने अनजान में ही यह स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार धन-सम्पत्ति-संबंधी विचार अंत में मनुष्य-मनुष्य के बीच सम्बन्ध निर्धारित करते हैं। सब कुछ धन के अधीन है जो मानव-आचरण का मुख्य स्रोत है। इस प्रकार 'दत्ता' एक मध्यवर्गीय परिवार के जीवन और सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित है।

'ग्रामीण समाज' एक भयंकर तथा मूक दुःखांत गाथा है; जो ग्रामीण समाज के मध्यवर्गीय घेरे से संबंध रखती है। इसके दुःखी पात्र देहात के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरणार्थ रमा उन सभी भारतीय विधवाओं की प्रतीक है जिन्हें प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं। रमेश उन सभी प्रगतिशील लोगों का प्रतिनिधि है जो रूढ़ि-ग्रस्त समाज द्वारा बहिष्कृत कर दिए जाते हैं और जो अपने मनोनुकूल नारी से विवाह नहीं कर सकते। रमा विवाह के छः मास बाद विधवा हो गई। एक युवती विधवा आजीवन प्रेम की वेदना को सहन करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकती। रमेश उसके साथ विवाह नहीं कर सकता, क्योंकि वह जन्म से नीच जाति का है और

जाति मनुष्य का दुर्भाग्य लाने में किसी खल-नायक से भी अधिक निर्भय खेल खेल सकती है। देहात के जीवन को उच्च तथा नीच जाति के विचार प्रभावित करते हैं।

अपने स्वर्गीय पिता के श्राद्ध-संस्कार के अवसर पर रमेश दीर्घ काल के बाद गाँव में उस युवती विधवा से मिलता है। जब वह उनके घर की पवित्र परिधि में प्रवेश करता है तो उस लड़की की मासी उसका अपमान करती है। उसे उनसे कोई सहायता मिलती नहीं दीखती। जैसे भी हो, उसे उनकी सहायता के बिना भी इस संस्कार को यथाविधि सम्पन्न करना ही होगा। वह अपने को लोभ, निर्धनता, डाह, मूढ़ विश्वास, अज्ञान और घृणा में डूबे गाँव के लकीर के फकीर लोगों के बीच एकाकी अनुभव करता है। शरत् ने श्राद्ध-संस्कार और इसी प्रकार के अन्य सामाजिक समारोहों और समस्याओं के प्रति मानसिक प्रतिक्रियाओं से युक्त चरित्रों की सृष्टि करके ग्रामीण जीवन की अंतरंग जानकारी का परिचय दिया है। लेखक ने, जिसने ग्रामीण जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया है, उस समारोह का विशद् चित्रण किया है जिसे रमेश ने आयोजित किया और जिसका जनता ने 'बायकाट' किया। उसके विचार में देहात को आदर्श एवं गौरवमय रूप में दिखाना जीवन को मिथ्या बनाना है। ग्राम-सुधार एक जटिल कार्य है। जो भी व्यक्ति यह प्रयास करता है, गाँव के लोगों की शत्रुता और घृणा को आमंत्रित करता है। उसे उन लोगों में प्रचलित निपट अज्ञान और उदासीनता का अनुभव करना पड़ता है। जात-पात के वहम ग्रामीण जीवन के मूल में हैं। भयंकर दरिद्रता, भुखमरी, बीमारी और मृत्यु देहाती जीवन के अभिन्न अंग

हैं। रमेश को यह सब देखना पड़ता है और इससे वह निराश ही नहीं होता, वरन् उसे गहरा आघात पहुँचता है। रमा और रमेश का मिलन इस रूढ़ि-ग्रस्त वातावरण में होता है जो उनके प्रेम के विकास और सुख की वृद्धि में घोर रूप में बाधक है। रमा विधवा है जिसे रूढ़ि-ग्रस्त समाज ने प्रेम तथा उत्साह से रिक्त जीवन बिताने का दण्ड दे रखा है। यद्यपि शैशव में उन्होंने परस्पर स्नेह किया और अब भी एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हैं, फिर भी वे उन आशा-अभिलाषाओं को सिद्ध नहीं कर सकते जिनका उन्हें अधिकार है। रमेश की रुग्णावस्था में रमा उसकी सेवा-शुश्रूषा करती है और यह उसे लांछित करने के लिए पर्याप्त है। सामाजिक अत्याचार से पीड़ित वह उस गाँव से नाता तोड़ने को विवश हो जाती है जिसने उसके जीवन का सर्वनाश कर डाला है। उसकी मासी विश्वेश्वरी क्रोध से दाँत पीसती है और उस समाज को कोसती है जिसने उस पर निरंतर अत्याचार और अन्याय किया है। अन्त में भगवान न्याय करते हैं और दो प्रेमी एक दूसरे से सदा के लिए बिछुड़ जाते हैं।

व्यक्ति और समाज के बीच विद्यमान संघर्ष का उपन्यास में विशद चित्रण हुआ है। रमा और रमेश को उस ग्रामीण वातावरण में सामाजिक शक्तियों का विरोध करना पड़ता है जो अंत में उनके प्रेम को असफल बनाता और जीवन को कुचल डालता है। रमा को समाज के असहाय शिकार के रूप में दिखाया गया है। रमेश भी अपने को ग्रामीण जीवन के चंगुल में फँसा पाता है जो उसके दुर्भाग्य का कारण बनता है। रमेश को गाँव में रहना पड़ता है जहाँ वह अपने शून्य जीवन की पूर्ति समाज-सुधार और ग्राम्य-पुनर्निर्माण द्वारा करता है। यह काम प्रेम

और सुख का स्थान नहीं ले सकता। उपन्यास सस्ते प्रचार के रूप में गिर नहीं जाता। लेखक कला और सामाजिक लक्ष्य के बीच संतुलन स्थापित करने में सफल हुआ है। इस उपन्यास में वह ग्रामीण जीवन के सीधे-सादे चित्रण से ही संतुष्ट नहीं होता, वरन् अनेक सामाजिक समस्याओं को उनके लिए कोई स्पष्ट समाधान सुझाए बिना प्रस्तुत करता है। उपन्यास का सुगठित स्वरूप भारतीय ग्रामीण जीवन के एक महत्त्वपूर्ण अंग को चित्रित करता है। अनेक गौण पात्रों की अवतारणा इसके गठे हुए रूप में बाधा नहीं डालती और न ही इसकी एकता को भंग करती है। इसके विपरीत यह लाखों की संख्या में भारत के गाँवों में बसने वाली जनता की ओर संकेत करती है। गोविन्द, गांगुली, धर्मदास, दीनानाथ, गोपाल अपनी समस्त विशेषताओं से युक्त ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। विश्वेश्वरी उन सभी स्नेहशील माताओं के समान है जिनमें जीवन के दुःख और अन्याय को सहन करने की शक्ति है। उपन्यास के अन्त में वह रमा की वकालत करती है और उन लोगों को कोसती है जिन्होंने उसके सुख को नष्ट कर डाला है। रमेश भी उसे समवेदना एवं स्नेह से पूर्ण पाता है। वह उन दो तरुण प्रेमियों के प्रेम की गहराई से परिचित है। वह इसकी असारता को भी अनुभव करती है। मासी सेन्ति उसके सर्वथा विपरीत है। वह चिड़चिड़ी, रोबीली, स्नेहहीन और तंगदिल है। वह दूसरों के दोष निकालने और सम्भव हो तो उन पर लांछन लगाने के लिए सदा तैयार रहती है। किसी भी गाँव में ऐसा व्यक्ति प्रायः मिल जाता है। इस प्रकार 'देहाती समाज' ह्रास की ओर बढ़ रहे ग्रामीण जीवन का सच्चा चित्र है। ह्रासोन्मुख समाज-व्यवस्था को उसके

आदर्शीकरण के किसी भी प्रयास के बिना विशदता से चित्रित किया गया है। शरत् एक ऐसे मध्यवर्गीय व्यक्ति के दृष्टिकोण से अपने विषय पर विचार करते हैं जो समाज के आर्थिक ढाँचे को मूलतः परिवर्तित किए बिना समाज-सुधार में प्रवृत्त होता है। समाज-विधान का आधार अछूता ही रहता है। मध्यवर्गीय समाज के आधारभूत मूल्य इन लोगों के जीवन को प्रभावित तथा शासित करते रहते हैं। इसके साथ ही वह अतीत के कृषि-प्रधान समाज के संबंध को आदर्श और गौरवमय रूप में नहीं दिखाता। वह देहात के जीवन और समस्याओं के भीतर निर्मम अंतर्दृष्टि का परिचय देता है। वस्तु-विधान और चरित्र-चित्रण को उपन्यास के सामाजिक उद्देश्य के अधीन करके लेखक ने कलात्मक संतुलन स्थापित किया है।

'पंडितजी' भी ग्रामीण जीवन के दुःख और विषाद की कहानी है। इस उपन्यास के सुखान्त होने पर भी इसकी नायिका आजीवन सामाजिक अत्याचार और मिथ्या अहंकार की शिकार बनी रहती है। वह स्वयं अपने दुःख और पीड़ा के लिए किसी भी तरह उत्तरदायी नहीं है। परिस्थितियाँ उसके वैवाहिक सुख में सदैव विघ्न डालती रहीं। उसके दुःख की कहानी का आरम्भ तभी हो जाता है जब केवल दो वर्ष की आयु में ही वह पिता से वंचित हो गई। पाँच वर्ष की सुकुमार अवस्था में उसका विवाह हो गया; किन्तु अपनी विधवा माँ के लांछन के कारण ही वह पति गृह से निर्वासित कर दी गई। दूसरों से वैर शोधने के लिए माँ ने अपनी पुत्री को एक वैरागी से ब्याह कर नाक कटवा ली जो विवाह के छः मास के भीतर ही चल बसा। यह सब उसे तब देखना पड़ा जब वह केवल सात वर्ष की ही थी। तब से वह पूर्णरूपेण विधवा

थी जिसमें प्रचुर रूप एवं सौंदर्य था। उसका पहला पति बृन्दाबन अभी तक जीवित था, चाहे उसने अपनी दूसरी पत्नी को खो दिया था। कुसुम की जीविका का एक-मात्र सहारा उसका भाई था और वह भी गाँव में फेरी लगाता था। बृन्दाबन उसके भाई के द्वारा उसके साथ फिर से सामाजिक नाता जोड़ने को उत्सुक था जिसे बृन्दाबन की सम्पत्ति और सामाजिक स्थिति ने सहज ही लुभा लिया। वह एक स्कूल-मास्टर था जिसने अपनी सद्भावना और दानशीलता से गाँव में व्यापक प्रभाव जमा रखा था। वह उसके साथ अपने पूर्व सम्बन्ध को ताज़ा करना चाहता था; लेकिन वह अपने भाई को असहाय और अकेला नहीं छोड़ सकती थी। समाज की दीवार उनके बीच समान रूप से दृढ़ थी। अहंकार की भावना भी उनकी राह में बाधक थी। वह अत्यधिक निर्धन और दुःखी थी, किंतु उसने आत्म-सम्मान को नहीं छोड़ा। अत्यधिक मनाए जाने के बाद वह बृन्दाबन से स्नेह करने लगी। उसके बालक को देख कर उसमें वात्सल्य-भावना जाग उठी और वह शिशु का लालन-पालन करने की भावना को दबा न सकी। उस बालक ने दोनों के बीच एक निकट एवं घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दिया। इसी बीच उसके भाई कुञ्ज का विवाह हो गया और कह धीरे धीरे उससे दूर होता गया। वह यदा-कदा उस बच्चे को अपने पास बुला लेती जो निपट एकाकीपन के क्षणों में उसे सांत्वना एवं शांति देता। ऐसा होने पर भी वह उदास और शोकमग्न ही रहती। बृन्दाबन व्यस्त रहता। जीवन का आग्रह उन्हें एक दूसरे की ओर खींच लाया। कुसुम का भाई उससे स्नेह न करता और उसकी सास तथा पत्नी उससे घृणा करतीं। स्कूल-मास्टर भी एकाकी जीव था। उसे एक ऐसी नारी की आवश्यकता थी

जो उसके बालक की देख भाल कर सके; परन्तु आत्म-सम्मान और लोक-लाज उनके पुनर्मिलन की राह में बाधक थे। बच्चा बीमार पड़ गया और इससे वह रोग-ग्रस्त शिशु का उपचार करने को बाध्य हो गई। वह उन्हें घोर निराशा में छोड़ कर चल बसी। वे जीवन से उकता से गए। बृन्दाबन ने अपने गाँव के घर को छोड़ जाना तय किया और कुसुम को अपने भाई के साथ रहना पड़ा। अंत में उन्होंने शांति और सुख की खोज में एक साथ चल देने का निश्चय किया। शिशु को वह खो चुकी थी; अब पति को खो देने का साहस उसमें न था।

'पंडितजी' एक सुगठित उपन्यास है। कथा का व्यवस्थित एवं संतुलित ढांचा इसके सुडौल रूप और आकार का आधार है। गाँव में हैज़ा फैलने की एक छोटी-सी घटना के अतिरिक्त कहीं भी नहीं कुछ खटकता। कुसुम के दुःखी तथा अंधकारमय जीवन को अंत में प्रेम का स्पर्श उज्ज्वल बना देता है, अन्यथा यह एक अत्यन्त निराशाजनक गाथा बन जाती। वह उन सामाजिक शक्तियों की असहाय शिकार है जो उसके स्वाभाविक सुख को कुचल डालने वाली हैं। जीवन की अबाध गति को रोकने के प्रयास में वह हमारी श्रद्धा की अपेक्षा दया को जगाती है। जीवन की परिस्थितियाँ उसे इतना व्याकुल कर देती हैं कि वह आत्महत्या करने का विचार करती है। यद्यपि वह अहंकार और आत्म-सम्मान से युक्त है, तथापि उसके उस दुर्भाग्य का सारा अपराध उसी पर नहीं है जो एक बाह्य शक्ति द्वारा उस पर लाद दिया गया है। यह शक्ति उसकी समझ और पकड़ के बाहर है। यह बाह्य सामाजिक वातावरण का रूप लेती है। इस प्रकार यह उपन्यास उन सामाजिक नियमों की कड़ी आलोचना है जो व्यक्तित्व के विकास में

बाधक और जीवन के सुख को कुचल डालने वाले हैं।

'स्वामी' में प्रेम और कर्तव्य की दुविधा में पड़ी एक नारी के अन्तर के संघर्ष को चित्रित किया गया है। सौदामिनी एक व्यक्ति से प्रेम करती है और दूसरे से उसका विवाह हो जाता है। ऐसा प्रायः मानव-जाति में, विशेष कर मध्यवर्गीय समाज में होता ही है। इस समाज में, जो मानवता से अधिक व्यवसायिक सम्बन्ध द्वारा शासित है, विवाह सम्बन्धी संघर्ष अनिवार्य है। सौदाभिनी अपने पति से प्रेम नहीं कर सकी। वह अपने युग की उपज और उस वर्ग की सदस्य है जो 'रोमांटिक' प्रेम का भूखा है। विवाह व्यवसाय बन कर रह गया है। जीवन के प्रति उसका स्वभाव शंकालु बन जाता है। यह युग के शिक्षित मध्यवर्ग का लोकप्रिय पंथ बन गया है। नरेन्द्र के साथ ईश्वर के अस्तित्व-संबंधी वाद-विवाद के बीच वह उसके प्रति आकृष्ट होने लगती है और इस आकर्षण की परिणति प्रेम में होती है। जैसा कि प्रायः हुआ करता है, निर्मम विधि के हाथों उस सुखी युगल को एक दूसरे से बिछुड़ना ही पड़ता है। सौदामिनी की सगाई की बात-चीत होती है। उसकी माँ और उस स्त्री के बीच जो उसके विवाह का प्रस्ताव ले कर आती है विचार-विनिमय होता है। उसका भाग्य बन चुका है। नरेन्द्र यह जान कर मर्माहत हो उठता है। वह उससे जीवन-भर के लिए विदा लेने आता है। दो प्रेमी सदा के लिए बिछुड़ जाने के लिए मिलते हैं। अब वह पूर्णरूपेण विवाहित नारी है जो अपने पति से स्नेह नहीं कर पायी। उसके जीवन की सारी चाह मिट गई है। वह हर वस्तु से विरक्त हो जाती है। पति उसके प्रति स्नेहमय, क्षमाशील और उदार हैं। वह उसके साथ कोमलता और स्नेह का व्यवहार करते हैं। वह

उनकी ओर आकृष्ट होने लगती है और इससे उसके मन में भयंकर संघर्ष उठ खड़ा होता है। वह नरेन्द्र और अपने पति—प्रेम और कर्त्तव्य—के बीच डगमगाने लगती है। कालान्तर में वह पति की ओर खिंच जाती है और उसे पता चलता है कि उनके दोनों के जीवन के प्रति दृष्टिकोण में मूल भेद है। वह नास्तिक है और पति आस्तिक तथा वैष्णव हैं। वे आध्यात्मिक समस्या पर विस्तार से विचार करते हैं, लेकिन किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच पाते। वह अपने तेज़ स्वभाव को प्रदर्शित करती और सास का विरोध करती है।

नरेन्द्र उसकी संकट-वेला में उसे फिर से पाने के लिए आ पहुँचता है। उसे उसकी जीवन के प्रति उपेक्षा और अपने विवाह में निराशा का समाचार मिलता है। वह उन्मुक्त प्रेम के नाम पर दाम्पत्य-सूत्र को छिन्न-भिन्न करने का एक पूरा प्रयास करता है। नारी को पुरुष की दासी बन कर नहीं रहना है; उसे अन्याय एवं अत्याचार के प्रति विद्रोह करना होगा। इन उत्तेजक शब्दों से वह प्रभावित हो जाती है। जब वे इस गुप्त-संवाद में लीन होते हैं, तो घर की नौकरानी छिप कर सब कुछ सुन लेती है। पति का तीव्र विरोध करने के बाद वह उसकी अनुपस्थिति में अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है। अपराध की भयंकर चेतना के जागने और भावोत्तेजना के शान्त होने पर वे आपस में भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित करके अपने मन की उलझनों को सुलझाते हैं। इस शोधन-कार्य को कहानी में यथार्थ ढंग से चित्रित किया गया है। सौदामिनी का अपने पति से पुनर्मिलन होता है जिसने उसे धैर्य, श्रद्धा एवं त्याग द्वारा पुनः प्राप्त किया है। उसे सत्पथ पर लाने में नौकरानी द्वारा किया गया कार्य सराहनीय है। नरेन्द्र दृष्टि से ओझल

हो जाता है।

सौदामिनी उपन्यास की केन्द्र-बिन्दु है। वह दो पुरुषों के बीच डोलती रहती है। नरेन्द्र उसके शैशव के प्रेम का पात्र है। उसका विवाह एक ऐसे पुरुष से होता है जो असाधारण रूप से सहनशील एवं सच्चरित्र है। उसके स्थान पर कोई और होता तो आपे से बाहर हो जाता। वह पत्नी के उदासीन आचरण पर ध्यान नहीं देता। सौदामिनी पति के उस स्नेह की उपेक्षा नहीं कर सकती जिसकी वह उस पर बौछार करता है। अन्ततः वह उसके प्रेम के वशीभूत हो जाती है। इस चिरन्तन प्रेम-समस्या को सुलझाने के लिए नरेन्द्र का विदा हो जाना निराशापूर्ण है। उसके प्रेम की निराशा एवं निष्फलता भाई-बहन के उस सम्बन्ध से पूरी तरह प्रकट हो जाती है जो इस उलझन को सुलझाने के लिए उनके बीच स्थापित किया जाता है। लेखक किसी और प्रकार से इस समस्या को सुलझा न पाने से इस साधन को बहुधा अपना लेता है।

मध्यवर्गीय समाज में किसी अनाथ लड़की का विवाह प्रायः एक जटिल समस्या बन जाता है। 'परिणीता' एक ऐसी ही युवती के जीवन से सम्बन्धित है जो अपने मामा के मन का बोझ बनी हुई है। गुरुचरण एक साधारण क्लर्क है जो अपने तरुण तथा निर्बल कंधों पर गृहस्थी का भारी बोझ उठाए हुए हैं। वह आगे ही ऋण से दबा हुआ है। ललिता उसके बोझ की रही-सही कमी पूरी कर देती है। गुरुचरण इस भार के नीचे पिस जाता है। शेखर नामक एक युवक को इस जवान लड़की के संरक्षण का भार सौंपा जाता है। होनी हो कर रहती है। वे एक दूसरे की ओर आकृष्ट होने लगते हैं। शेखर का पिता

उस गरीब क्लर्क को अपना धन लौटाने के लिए तंग करने लगता है। गुरुचरण एक और परिवार की सहायता खोजता है। गुणेन्द्र, जो उस लड़की पर मोहित है, उसके मामा को बिना कोई ब्याज वसूल किए धन उधार दे कर उसकी रक्षा करता है। शेखर पुनः प्रकट होता है। ललिता भोलेपन में उसके गले में अपनी गुड़िया का हार पहिना देती है। यह अपरोक्ष रूप से उनका परिणय था। वह विदा होता है। अब गुणेन्द्र सामने आता है। ललिता के मामा उसकी यथासमय सहायता के लिए उसके प्रति कृतज्ञता जताते हैं। कुछ काल तक बीमार रह कर मामा का देहान्त हो जाता है। गुणेन्द्र ब्रह्मसमाजी है, अतः उसके साथ जाति-भ्रष्ट व्यक्तियों का-सा व्यवहार किया जाता है। वह किसी और लड़की से विवाह कर लेता है। शेखर अन्त में सौदामिनी को पा लेता है। गुणेन्द्र इस त्याग के कारण सबकी दृष्टि में ऊँचा उठ जाता है।

'परिणीता' भी एक सुगठित उपन्यास है। एक प्रसंग दूसरे में इस प्रकार गुँथा हुआ है कि उपन्यास का समूचा रूप सम्बद्ध जान पड़ता है। शरत् ने एक मामूली क्लर्क के जीवन एवं समस्याओं को सुन्दर ढंग से निरूपित किया है। उन्होंने निम्न मध्य-वर्ग की निकट जानकारी का परिचय दिया है। 'अरक्षणीया' में कमला का पिता समाज के इसी वर्ग से सम्बन्ध रखता है। शेखर, गुणेन्द्र और ललिता पूर्ण-विकसित पात्र हैं जो संघर्ष और परिवर्तन की ओर उन्मुख मध्यवर्गीय समाज के प्रतिनिधि हैं। एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार के जीवन को यथार्थ ढंग से अंकित किया गया है जो पाठक को लुभाता है। धन के माध्यम से प्रेम का सम्पन्न होना मध्यवर्गीय जीवन का सामान्य लक्षण है। शरत् अपने कथा साहित्य में इस राग को अलापने में कभी नहीं अघाते। इसके

अतिरिक्त गुप्त प्रेम ही विवाह में परिणत होता है। शरत् बचपन के प्यार या फिर गुप्त प्रेम को वाणी देने में सिद्धहस्त हैं। इनमें काव्य का पुट सदा विद्यमान रहता है। बचपन का प्रेम साधारणतया असफल ही होता है; गुप्त प्रेम की परिणति चाहे परिणय में हो जाए। ललिता स्वभावतः प्रेम और कृतज्ञता की दुविधा में पड़ी हुई है। गुणेन्द्र को उसका आदर प्राप्त है; शेखर उसके प्रेम का अधिकारी है। वह उपन्यास की केन्द्र-बिन्दु है। उपन्यास का शीर्षक (परिणीता) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह उसके लक्ष्य की ओर संकेत करता है।

'नव-विधान, भारतीय समाजिक जीवन की नवीन व्यवस्था से सम्बन्ध रखता है। एक प्रोफेसर का जीवन इस उपन्यास की सामग्री प्रस्तुत करता है। शैलेश एक विदेशी विश्वविद्यालय का दर्शन का स्नातक है। सामाजिक समस्याओं के प्रति उसका दृष्टिकोण स्वतन्त्र एवं उदार है। दुर्भाग्य से वह विधुर हो गया है। तब से उसका गृह-जीवन अव्यवस्थित पड़ा हुआ है। उसके मित्र उससे किसी शिक्षित युवती से विवाह करने का आग्रह करते हैं। उसकी पूर्व पत्नी सुशिक्षित तो न थी, परन्तु सहानुभूतिपूर्ण, स्नेहशील और गृहस्थी के कार्यों में निपुण थी। वह वास्तव में घरेलू जीव थी। शैलेश को अपनी दूसरी पत्नी ऊषा की अद्भुत क्षमता का परिचय मिलता है जो घर के आय-व्यय में संतुलन रख सकती है। कालान्तर में वीणा के तार बेसुरे हो जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि वे एक-दूसरे के साथी नहीं बन सकते जो नए युग की पुकार है। इस वैमनस्य के परिणामस्वरूप पत्नी अपने नाना के घर चली जाती है। वर किसी भी आधुनिक नारी की तरह स्वाभिमान एवं अहंकार से पूर्ण है। प्रोफेसर महोदय अनुभव करते हैं कि उनकी पत्नी में धर्म-भाव

का अभाव है। दुर्बल-चित्त प्रोफेसर को हवा का कोई भी झोंका उड़ा ले जाता है। एकाएक वह अपनी पहली पत्नी के पुत्र के साथ वैष्णव बन जाते हैं। बाद में अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप से वह जीवन के समतल मार्ग की ओर लौट आते हैं और उनकी पत्नी भी नाना के घर से लौट आती है।

प्राचीन और नवीन समाज-व्यवस्था के बीच विद्यमान संघर्ष किसी बड़े उपन्यास का सशक्त विषय हो सकता है। 'नवविधान' में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय का हलका चित्रण हुआ है। यह एक छोटे-से दायरे तक सीमित है और इस लघु उपन्यास में विषय का पूर्ण निरूपण तक नहीं हो पाया। इससे यह अनिवार्य हो जाता है कि इसका चरित्र-चित्रण सीमित, वस्तु-विधान शिथिल और सामाजिक उद्देश्य क्षीण एवं निर्बल हो। ऐसा होने पर भी यह कहानी प्रभावशाली है क्योंकि इसमें प्राचीन समाज-विधान का विरोध कर रहे मध्यवर्गीय समाज के एक महत्त्वपूर्ण अंग पर प्रकाश डाला गया है। नवीन व्यवस्था धार्मिक चिन्तन और सामाजिक आचरण में उदार विचारों की प्रतीक है। यह प्रगतिशील आन्दोलन उस आदि मध्यवर्ग ने चलाया था जो भारत की धरती पर पाश्चात्य सभ्यता को अंकुरित करने को उत्सुक था। शरच्चंद्र जो बाद के मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखते हैं, धर्म और चिन्तन में तथा-कथित नवीन व्यवस्था पर चुटकियाँ लेते हैं।

'निष्कृति' में संयुक्त परिवार की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है जिसमें तुच्छ कलह, डाह, अहंकार और प्रेम मिलते हैं। शरच्चन्द्र ने पैनी दृष्टि और साहित्यिक सहानुभूति के साथ संयुक्त परिवार के जीवन का अध्ययन किया है। गिरीश और हरीश सगे भाई हैं। रमेश

उनका चचेरा भाई है। सभी विवाहित और बाल-बच्चों वाले हैं। कुछ ऐसी उलझनें पैदा हो जाती हैं जिनसे संयुक्त परिवार के आधार के छिन्न-भिन्न हो जाने की आशंका बनी रहती है। सिद्धेश्वरी सबसे बड़े भाई की पत्नी है, शैलजा जो तेज़ स्वभाव की है चचेरे भाई की पत्नी है। हरीश की पत्नी कुछ हद तक पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रँगी हुई है और परिवार में सदा अपना ही राग अलापती है। एक बच्चे को पीटने पर जो हंगामा खड़ा होता है उससे इन स्त्रियों के बीच वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है। वे ठेठ अपने ढङ्ग से आपस में झगड़ती रहती हैं। सिद्धेश्वरी अन्य दोनों में समझौता कराने की चेष्टा करती रहती है, जब तक वह स्वयं सबसे छोटे भाई की पत्नी के विरुद्ध नहीं हो जाती। अतुल, जो लाड़ला बालक है और जिसे अपनी अशिष्टता के कारण चपत पड़ती है, घर में तूफान खड़ा कर देता है। इससे उन स्त्रियों में वैमनस्य तथा भेद-भाव बढ़ जाता है। शैलजा, जो घर-भर पर शासन करती है, इस अप्रिय घटना के लिए दोषी ठहराई जाती है। वह परिवार से नाता तोड़ने को विवश हो जाती है। यह मामला बड़े भाई के पास निर्णय के लिए भेजा जाता है; लेकिन वह मुक़दमेबाजी में इतना व्यस्त रहता है कि उसे घरेलू झगड़ों को निबटाने का अवकाश ही नहीं मिलता। घरेलू मामलों के प्रति उसकी पूर्ण उपेक्षा अत्यधिक व्यंगात्मक और हास्यास्पद है। शैलजा के चले जाने पर सिद्धेश्वरी को उसके बच्चों का अभाव अखरता है। उन बच्चों का वियोग उसके वत्सल हृदय में एक गहरा रिक्त-स्थान पैदा कर देता है। दुर्भाग्य से शैलजा को भयंकर दरिद्रता घेर लेती है और वह मौत का आवाहन करती है। गिरीश, जो ऐसे ही समय वहाँ आ पहुँचता है, उसके दुःख से

दुःखी हो उठता है। वह अपनी धन-सम्पत्ति उसे अर्पित करके अपने उदार हृदय का परिचय देता है। वह संयुक्त परिवार को विश्रृंखलता से बचाने के लिए समझौता लाने की चेष्टा करता है।

उपन्यास के जो पात्र अपेक्षाकृत विकसित हैं वे तीन नारियाँ हैं। कथा में हास्य उत्पन्न करने के लिए गिरीश के चरित्र का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण किया गया है। घरेलू झंझटों के प्रति उसकी पूर्ण उदासीनता और बाहरी झगड़ों में उसकी लीनता ऐसी असंगत स्थितियों को खड़ा कर देती है जो हास्य एवं विनोद की सृष्टि करती हैं। छोटी से छोटी घटनाओं को संयुक्त परिवार के जीवन का यथार्थ चित्र अंकित करने के उद्देश्य से लिया गया है। इन सभी घटनाओं को एक ऐसी कथा में गूँथ दिया गया है जो उत्सुकता एवं जिज्ञासा को बनाए रखती है जब तक कि उसका उपसंहार संधि के स्वर में लीन नहीं हो जाता। संवाद विभिन्न पात्रों तथा विविध-स्थितियों के अनुकूल हैं। संवाद की नाटकीय विशेषता कथा में सर्वत्र बनी रहती है। समाज की पुरातन सामंतीय व्यवस्था को सूक्ष्म अंतर्दृष्टि और प्रदीप्त कल्पना द्वारा यथार्थ ढङ्ग से चित्रित किया गया है।

'चन्द्रनाथ' लेखक के 'पतित नारी' के प्रिय विषय को ले कर चलता है। सरयू सेवा एवं त्याग की साकार प्रतिमा है। चन्द्रनाथ उसके साथ जल्दबाज़ी में विवाह कर लेता है। उसे अपने कट्टरपंथी, लालची तथा स्वार्थी मामा से पता चलता है कि सरयू एक 'पतित नारी' की पुत्री है। इससे स्थिति उलझ जाती है। सरयू भोली-भाली, स्नेहमयी एवं निष्कपट है। चन्द्रनाथ भी उसे बहुत चाहता है, परंतु लोकमत उसे उसका परित्याग करने तथा उसे अपने घर से निकाल देने को

बाधित कर देता है। सरयू अपनी भावी स्थिति से भयभीत हो जाती है, लेकिन अपने पति के घर की लाज रखने के लिए वह हर तरह का त्याग कर सकती है। चन्द्रनाथ जो मध्यवर्गीय समाज का प्रतिरूप है, उसे विषपान करने की राय देता है। वह अपने जीवन का अंत करने को प्रस्तुत है; लेकिन उसका भावी शिशु उसे आत्म-हत्या करने से रोकता है। वह अपने पति से विदा होती है। कहानी एक आकस्मिक मोड़ लेती है, और उनका पुनर्मिलन होता है। जीवन की यातनाएँ उन्हें पावन बना देती हैं।

सरयू को एक महान नारी के रूप में दिखाया गया है जो असाधारण त्याग, श्रद्धा और प्रेम की मूर्ति है। यही भावना उसके पति के जीवन को उज्ज्वल बनाती है और उसके चरित्र को रूपान्तरित कर देती है। मणिशंकर रूढ़िग्रस्त एवं पुराणपंथी समाज का प्रतिनिधि है और एक खलनायक के रूप में आता है। उसके चरित्र का कहानी में निर्दयता से भंडाफोड़ किया गया है। संकट के क्षणों में संवाद सशक्त रूप से नाटकीय और तीव्र रूप से भावपूर्ण हैं। कथा का विधान असम्बद्ध एवं शिथिल है। इसकी रचना प्रसंगों और दृश्यों के आधार पर की गई है। इस उपन्यास में सामान्य शक्ति एवं बल का अभाव है, क्योंकि यह न तो कल्पना की उड़ान की उपज है और न ही किसी गम्भीर वैयक्तिक अनुभव का परिणाम है। लेखक के प्रिय तथा मूलभूत विषय को, जिसे इस उपन्यास में दोहराया गया है, प्रस्तुत सामाजिक परिस्थिति एवं वातावरण में कलात्मक ढंग से निभाया गया है। 'पण्डितजी' कला की दृष्टि से एक श्रेष्ठतर रचना है, चाहे इन दोनों के विषय समान हैं। 'चन्द्रनाथ' का उपसंहार कृत्रिम एवं अस्वाभाविक

जान पड़ता है।

'पथ-निर्देश' विफल प्रेम की कहानी है। धर्म अथवा परम्परागत आस्था इस असफलता का कारण बनती है। हेम एक युवती एवं रूपवती लड़की है जो अपने पिता से वंचित हो गई है। वह निर्धन तथा असहाय हो गई है। वह अपनी माँ के साथ, जो कट्टर विश्वास की मूर्ति है, एक धनी एवं युवा वकील के घर आश्रय लेती है। वह पुस्तकों के अध्ययन में रत रहता है। वह लापरवाह और निश्चिन्त जीवन व्यतीत करने वाले उच्चवर्ग का सच्चा प्रतिनिधि है। वह ब्रह्म-समाज से सम्बन्ध रखता है, जिसका उस लड़की की माँ घोर विरोध करती है। कालान्तर में हेम चुपचाप और अनजान में ही उस नवयुवक के जीवन में सरक आती है और उसे पा लेती है। उसकी माँ को उन दोनों के आकस्मिक अनुराग का कोई कारण नहीं दीख पड़ता। वह समय रहते अपनी पुत्री का कहीं विवाह कर देने को चिन्तित हो उठती है। एक तरेसठ वष के विधुर के साथ वह हेम का विवाह तय कर देती है। हेम एक अपरिचित व्यक्ति के साथ अपनी सगाई का घोर विरोध करती है। वह गुणेन्द्र से सगाई तोड़ने का अनुरोध करती है। किन्तु परम्परा तथा पुरातन आस्था उस अकेले जीवन को परास्त कर देती हैं। उसका विवाह उस बूढ़े विधुर से हो जाता है जो कुछ काल के बाद चल बसता है। हेम को एक विधवा का दुःखी जीवन बिताना पड़ता है। अनुताप की अवस्था में उसकी माँ उसे उसके प्रेम-पात्र से पुनः मिलाने की चेष्टा करती है, परन्तु वह अवसर खो चुकी है। एक विधवा के लिए विवाह क्या उचित है ? हेम अपने प्रेम-पात्र से यह प्रश्न करती है, लेकिन वह इसका उत्तर नहीं दे पाता। जब वह उससे विवाह

करने का निश्चय कर लेता है, तो वह झिझकने लगती है। तो भी उनमें परस्पर गहरा अनुराग है। उस नवयुवक ने हेम से प्रेम किया है, लेकिन वह उससे विवाह नहीं कर पाया। तब वह उसे बहन का स्थान देता है। आधुनिक भारतीय कथा-साहित्य में असफल प्रेम की परिणति प्रायः भाई-बहन के सम्बन्ध में होती पाई जाती है।

लेखक, जिसने अपनी रचनाओं में इस विषय को बहुधा अपनाया है, हेम और गुणेन्द्र की मानसिक गतिविधि के भीतर गहरी अंतर्दृष्टि का परिचय देता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे उसे प्रेम की असफलता का गहरा अनुभव है। हेम उन भीरु नारियों में से नहीं है जिनका वैवाहिक सुख जाति और परम्परा की वेदी पर बलि हो जाता है। वह सगाई के समय अपने भाव को दृढ़ रूप से प्रकट करती है, लेकिन उसकी माँ जो उसके लिए वर के चुनाव में अपना ही मत चलाना चाहती है उसकी इच्छा की उपेक्षा करती है। सामंतीय समाज में नारी आखिर व्यवसाय की वस्तु ही तो है, जिसका विवाह के बाज़ार में मूल्य लगाया जाता है। उसका स्वामी उसे जैसे भी चाहे बेच भी सकता है। लेखक ने यह दिखाते हुए कि किस तरह परम्परा जीवन के सुख को नष्ट कर डालती है नारी के प्रति किए जाने वाले ऐसे व्यवहार के विरुद्ध आवाज़ उठाई है। हेम ऐसी नारियों के भाग्य का प्रतिनिधित्व करती है जो यह अनुभव करती हैं कि विधाता उनके सदा प्रतिकूल रहा है। दुःखी विधवाएँ साधारणतः किसी तीर्थ-स्थान की ही शरण लेती हैं और धर्म प्रायः दुःखी हृदयों को सांत्वना प्रदान करता है। गुणेन्द्र और हेम उस पुण्य-स्थान की राह पकड़ कर अपना रूढ़िगत परिणाम देखते हैं।

कथा का सारा वातावरण पीड़ा एवं निराशा से बोझिल है। यह उस मध्यवर्गीय समाज की विशेषता है जिसकी शरत् को गहरी जानकारी है। गुणेन्द्र, हेम और उसकी माँ के चरित्र को एक कुशल चित्रकार की तूलिका की सशक्त रेखाओं के साथ अंकित किया गया है। कथा में आकस्मिक रोग से कथानक की संतुलित एवं व्यवस्थित रचना तनिक विकृत हो गई है। संवाद अत्यंत संक्षिप्त, संयत तथा सम्बद्ध हैं।

'बैकुण्ठ का दानपत्र' निजी सम्पत्ति की समस्या के गिर्द घूमता है जो बहुधा मध्यवर्गीय परिवार में मानवीय सम्बन्धों को दूषित एवं विकृत कर देती है। बैकुण्ठ, जो देहात का एक समृद्ध व्यक्ति है, एक वसीयत-नामा छोड़ जाता है जो उसके परिवार में उलझनें पैदा कर देता है। गोलक और विनोद सौतेले भाई हैं जिन्होंने उसकी सम्पत्ति को विरासत में पाया है। विनोद उदासीन, लापरवाह, निश्चिन्त और निर्भीक है। उसकी माँ उसके सौतेले भाई का पक्ष लेती है जो एक भीरु तथा घरेलू स्वभाव का है। वह गाँव में अपने पुरखों की दूकान को चलाने में लगा रहता है। विनोद नवीन समाज विधान की उपज है। वह घर में अपना व्यक्तित्व बनाए रखता है। गोलक की पत्नी को नारी के यथार्थ रूप में दिखाया गया है। वह बूढ़ी माँ और अपने पति के बीच वैमनस्य पैदा करने का प्रयास करती है। वह चाहती है कि विनोद को भी रास्ते से अलग किया जाए जिससे समस्त सम्पत्ति उन्ही के हाथ लगे। विनोद युगों से अपने घर से बाहर रहा है। जैसे ही वह एक खोए हुए बेटे की तरह लौटता है, गोलक को उसके आगमन से ईर्ष्या और अप्रसन्नता होती है। वह उसके प्रति सहानुभूति भी रखता है। विनोद को अपने पिता की वसीयत में कोई

दिलचस्पी नहीं और वह उसके प्रति अपनी स्वाभाविक उपेक्षा जताता है। परिस्थितियाँ वृद्धा माँ को घर छोड़ने को बाध्य कर देती हैं। विनोद के मित्र उसे अपने भाई पर अभियोग चलाने के लिए उकसाते हैं, किन्तु वह ऐसा करने से रुक जाता है। कथा के उपसंहार में दोनों भाइयों के बीच संधि हो जाने से जिनका प्रेम के एक अद्भुत स्पर्श से सुधार, उद्धार तथा रूपान्तर हो जाता है, एक उपदेशात्मक स्वर मुखरित हो उठा है।

इस कथा का एक सामाजिक उद्देश्य है और यह एक ऐसी सामाजिक समस्या को लिए है जो मध्यवर्गीय समाज में प्रायः उठती रहती है। इसमें सम्पत्ति की समस्या को खड़ा किया है जो देहात में एक मध्यवर्गीय परिवार के लोगों के जीवन को शासित करती है। शरत् इस सामाजिक समस्या की विवेचना से इतने लिपट जाते हैं कि वह कला और चरित्र-चित्रण के आग्रह की उपेक्षा कर देते हैं। बैकुंठ, भिवानी, विनोद, गोलक, मनोरमा और अन्य गौण पात्रों का विकास कथा के साथ नहीं होता। उपसंहार में होने वाला आकस्मिक परिवर्तन उपदेशात्मक उद्देश्य से अनुप्राणित है। चरित्र-चित्रण हलका, कथानक का ढाँचा शिथिल एवं असम्बद्ध और यहाँ तक कि सामाजिक समस्या का निरूपण भी निर्बल है। सम्पत्ति की समस्या मध्यवर्गीय समाज का मूल आधार है; फिर भी लेखक उसमें अपनी सामान्य शक्ति और जीवन का संचार नहीं कर पाया। ऐसा जान पड़ता है कि उसने अपनी सृजनात्मक शक्ति को अपनी प्रथम और द्वितीय श्रेणी के उपन्यासों में लगा दिया है और मध्यवर्गीय जीवन को अंकित करने में वह अपनी सारी कला को उँड़ेल चुका है।

उपन्यास (तृतीय श्रेणी)

अपने उपन्यासों की तृतीय और अन्तिम श्रेणी में शरत् ने उन सभी समस्याओं को, जो उन्होंने अपनी आरम्भिक रचनाओं में खड़ी की थीं, सुलझाने के उत्साह में कला की उपेक्षा कर दी है। उपदेश देने की वृत्ति उनके भीतर इतनी समा गई है कि वह उन सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए जो इतनी विपदाओं का कारण बनी हैं, अधकचरे विचारों को बिखेरने को उत्सुक हो उठे हैं। इन उपन्यासों के स्पष्टतया सैद्धान्तिक स्वरूप के होते हुए हम देखते हैं कि पात्रों तथा कथाओं के आवरण में प्रचार पर्याप्त रूप में ढक गया है। न कहीं ध्वजाएँ फहराती हैं, न ही नगाड़े बजते हैं। नारे अपने लक्ष्य को नहीं बेधते। लेखक अपनी कला को सस्ते प्रचार के रूप में गिर जाने से बचा लेता है।

'पथ के दावेदार' में भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता को आधार बनाया गया है। इस उपन्यास का घटना-स्थल बर्मा है जहाँ भारतीय जीवन का मंथन होता रहा है। इस देश की परिवर्तनशील सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों को कथा के जाल में बुन दिया गया है। अपूर्व, जिसका पालन-पोषण भारत के एक रूढ़िग्रस्त एवं लकीर के फकीर परिवार में हुआ है, बर्मा के अंतर्राष्ट्रीय समाज में आ पड़ा है। परम्परा और परिवर्तन के बीच होने वाले द्वन्द्व को इस उपन्यास का आधार बनाया गया है। अपूर्व अपनी जन्मभूमि से उखड़ गया है और एक नवीन सामाजिक घेरे में रहने को बाध्य है। शरत् ने इस

अनुभवहीन युवक के अनुभवों को अनोखे ढङ्ग से अंकित किया है जो अपनी जननी और जन्मभूमि से बिछुड़ गया है। उसकी माँ उसे बर्मा में चार सौ रुपये मासिक वेतन पर भी नौकरी करने देना नहीं चाहती, फिर भी अपूर्व ऐसा करने पर तुल जाता है। एक उच्चजातीय नौकर उस युवक को निषिद्ध भोजन चखने से बचाने के लिए उसके साथ हो लेता है। पग-पग पर स्वामिभक्त तथा विश्वस्त तिवारी अपूर्व को उन कठिनाइयों के प्रति सचेत करता है जो उसे धर्म-भ्रष्टता से मुक्त भोजन बनाने में उठानी पड़ती हैं। साथ ही वह उस युवक की प्रत्येक गतिविधि पर कड़ी निगरानी भी रखता है।

मिस मेरी भारती जोज़फ, जो एक भारतीय ईसाई युवती है, अपूर्व के सम्पर्क में आने वाली प्रथम व्यक्ति है। अपूर्व को उसके पिता के स्वभाव का कटु अनुभव होता है, क्योंकि वह उसे अदालत में घसीट ले जाता है। भारतीयों के विरुद्ध जो जाति-भेद पाया जाता है, उससे वह इतना उद्विग्न हो उठता है कि भारतीय क्रिस्तानों और अंग्रेज़ों के प्रति विद्वेष व घृणा को प्रश्रय देने लगता है। यह उसके जीवन का प्रथम मौलिक अनुभव है जो उसकी कच्ची बुद्धि को प्रभावित करने और देश की सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं के प्रति उसके दृष्टिकोण को बनाने में बड़ी हद तक सहायक होता है। भारती, जो चेचक की महामारी में अपने माता-पिता से वंचित हो गई है, धीरे-धीरे सेवा और प्रेम द्वारा उसे पा लेती है। तिवारी के विरोध का स्वर भी उस समय काफी हद तक मंद पड़ जाता है जब वह अपूर्व की रुग्णावस्था में उसकी सुश्रूषा करती है। वह उनका अभिन्न अंग बन जाती है। होनी हो कर रहती है।

अपूर्व और भारती अपने बीच धार्मिक एवं सामाजिक भेद होते हुए एक दूसरे की ओर आकृष्ट होने लगते हैं। यहाँ तक कि तिवारी भी उस देश के उदार प्रभाव से बच नहीं सकता। मालिक और नौकर के अनुदार व्यवहार से भारती प्रायः खीझ उठती है और एक दिन अपनी खीझ का कारण प्रकट किए बिना कहीं चल देती है। अपनी अकृतज्ञता की भावना उस युवक के मन को कोंचती है जिसे भारती का अभाव खलता है। इसी बीच में भारती एक स्कूल में पढ़ाने लगती है और धार्मिक तथा सामाजिक बाधाओं से आकीर्ण जीवन-पथ को साफ करने के लिए एक सुधारक का काम करती है। अब से वह एक पथ-दर्शक और समाज-सुधारक बन जाती है। अपूर्व उसे सहज ही भुला नहीं सकता। अन्त में वह उसे मरणोन्मुख समाज-व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के गौरवयुक्त कार्य में संलग्न पाता है। यह एक ऐसा समाज है जो पुरुष और नारी दोनों की अन्तरात्मा को कुचल डालने वाला है। अपूर्व उस जाति-भेद की कहानी कहता है जिसने उसके मन को गहरी व्यथा पहुँचाई है। वह इसके लिए देश की राजनीतिक दासता को उत्तरदायी समझता है।

राजनीतिक दासता की समस्या उपन्यास के उत्तरार्द्ध तक चलती है। सुमित्रा जो एक अत्यधिक प्रगतिशील एवं स्वतंत्र विचारों वाली नारी है, एक गुप्त दल की गतिविधियों की अध्यक्षता करती है जिसकी स्थापना भारत की राजनीतिक मुक्ति के उद्देश्य से की गई है। अपूर्व और भारती इस क्रांतिकारी दल से गहरा सम्पर्क जोड़ लेते हैं, जिसका निर्देशक तथा व्यवस्थापक एक कुशल क्रान्तिकारी है जिसे सभी एक निर्भीक देशभक्त एवं महान नायक मानते हैं। यह अद्भुत व रहस्यमय

व्यक्ति, जिसे जीवन के अनेक अनुभव प्राप्त हैं, उक्त दल के सदस्यों में आतंक और विश्वास का संचार करता है। गुप्त सभाएँ और निरन्तर वाद-विवाद उनके मन को व्यस्त रखते हैं और नए प्रवेशक अपने देश को मुक्त करने के गौरवमय कार्य में जी-जान से जुट जाते हैं। नवीन पथ के ज्ञाता क्रियात्मक राजनीतिक कार्य और प्रचार में संलग्न होते हैं। भारती एक विशिष्ट सदस्य है जिसने अपने-आपको इस महान आदर्श में आत्मसात कर दिया है। मजदूरों की बस्तियों में जाने पर अपूर्व को कठोर आघात पहुँचता है जिसे जीवन के अंधकारमय, भयंकर और विकृत रूप का अनुभव होता है। वह प्रथम वार यह अनुभव करता है कि मानव ने मानव को क्या बना डाला है। डाक्टर, जो मनुष्य के वश का सब कुछ जानते हैं, इस दल की कार्यवाहियों का निर्देशन करते हैं और सब की सराहना के पात्र बनते हैं। अपूर्व और भारती राजनीतिक कार्य में संलग्न रहते हुए एक-दूसरे से गहरी एवं गुप्त घनिष्ठता जोड़ लेते हैं; परन्तु अपूर्व अपनी माँ को और परम्परा को जिसकी वह प्रतिनिधि है, भूल नहीं सकता। दुर्बलता के एक क्षण में वह अपने दल का कोई भेद खोल देता है और ऐसे विश्वासघात का दण्ड मृत्यु है। डाक्टर जो मितभाषी किन्तु क्रियाशील हैं, उसकी वकालत करते हैं और उसे मृत्यु से बचा लेते हैं। तिवारी अपने मालिक के प्रति संदेहशील और उस ईसाई युवती के साथ उसके रहन-सहन के प्रति शंकालु हो उठता है। भारती, जो अपूर्व की रक्षा करने में पर्याप्त सहायक होती है, उसके नितान्त अकेलेपन में उसके प्रति सहानुभूति दिखाती है। उसके लिए वह अपने आदर्श की बलि दे देती है। डॉक्टर जो अपने रूखे व कठोर बाहरी रूप के भीतर कोमल

हृदय छिपाए हुए हैं, भारती के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हैं। वह उससे क्रांति का मार्ग त्याग देने का अनुरोध करते हैं। भारती राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए क्रांति के अतिरिक्त किसी अन्य पथ को खोजने का प्रयास करती है। डॉक्टर विदा होते हैं और तब तक न लौटने का प्रण करते हैं जब तक क्रांति की आग सारे देश को लपेट न ले। क्रांति में उनका विश्वास चट्टान की तरह दृढ़ है। इस राज्-नीतिक मत के पक्ष-विपक्ष में स्पष्ट वाद-विवाद चलता है। क्रांतिकारी लोगों के मतानुसार पुरातन व्यवस्था चाहे कितनी ही पवित्र क्यों न हो समाप्त होनी ही चाहिए, भले ही इसका परिणाम पीड़ा एवं विषाद हो। भारती में क्रांति का सामना करने का साहस नहीं। कथा में उस स्थल पर मानवीय पुट मिलता है जहाँ शरत् उन डॉक्टर के प्रति भारती की दुर्बलता को प्रकट करते हैं जिन्होंने आगे ही अपने-आप को अपने आदर्श तथा मत के प्रति समर्पित कर रखा है। इस उलझन को उनके बीच भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित करके सुलझाया गया है। अपूर्व और भारती डॉक्टर के साथ अपना मूल भेद प्रकट करते हैं। डॉक्टर अपने साथियों व मित्रों के बीच अपने को एकाकी अनुभव करते हैं। आँधी-तूफान में उनका प्रस्थान उपन्यास का उचित उपसंहार बनता है।

अपूर्व और डॉक्टर क्रमशः उपन्यास के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध पर छाए रहते हैं। भारती उपन्यास की केन्द्र है। वह प्रधान व गौण पात्रों को मिलाने वाली कड़ी है। सुमित्रा और नवतारा की अवतारणा राज-नीतिक व सामाजिक जीवन में क्रांति की प्रेरणा को मुखरित करने के लिए की गई है। कवि का चरित्र मानव की आशा-आकांक्षाओं का प्रतीक है। अपूर्व, भारती और डॉक्टर पथ को खोजने वाले हैं और जीवन के

विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। चरित्र-चित्रण प्रवृत्तिशील है और कथानक का ढाँचा शिथिल है। शरत् पाठकों को जो संदेश देना चाहते हैं, उसी में लीन हैं। कला का प्रचार के अधीन होना कथा के मानवीय आकर्षण को कम नहीं करता। लेखक ने राजनीतिक विषय को ईमानदारी और भावुकता के साथ निभाया है। वह अपनी उस कलात्मक निस्संगता को सर्वथा खो नहीं देता जो उसके आरम्भिक उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है। डॉक्टर का रहस्यमय व्यक्तित्व पाठक को मोह लेता है जो उनकी निर्भीक व साहसी प्रकृति से विमूढ़-सा हो जाता है। भारती एक मुक्त युवती है जो अपनी शालीनता, सौन्दर्य एवं त्याग से एक कुलीन तथा पुराने विचारों वाले युवक के मन को मोह लेती है। अपूर्व परम्परा और परिवर्तन के बीच डोल रहे मानव-मन की आशा-निराशा को अभिव्यक्त करके मानवीय स्वर को मुखरित करता है। यह संघर्ष शरत् की कला एवं प्रतिभा का आधार है।

'शेष प्रश्न' वाद-विवाद तथा विचार-प्रधान उपन्यास है जिसमें उन सभी धार्मिक तथा सामाजिक प्रश्नों का अन्तिम उत्तर देने का प्रयास किया गया है जिन्हें लेखक ने अपनी आरम्भिक रचनाओं में उठाया था। कमल, जो उपन्यास की केन्द्र है, अत्यधिक स्वतंत्र विचारों वाली नारी है जो एक सहज-स्वाभाविक तथा भोग-विलासमय जीवन की प्रतीक है। उसका जन्म नीच घराने में हुआ और विवाह एक भारतीय ईसाई के साथ हुआ जो इसके बाद शीघ्र ही चल बसा। उस तरुणी विधवा ने फिर एक प्रोफेसर से शादी कर ली जिसने उसका परित्याग कर दिया। इस प्रकार वह जीवन में असहाय एवं अकेली रह गई। इसी बहुरंगी जीवन ने उसका दृष्टिकोण बनाया तथा उसके चरित्र को रूप दिया।

एक और कारण जिसने उसे उदार बनाया वह सामाजिक था। वह अपने पुरखों के घर तथा जन्म-भूमि से अलग हो गई थी। आसाम के चाय के बगीचों में उसका पालन-पोषण हुआ। अतः अपने घर अथवा परम्परा से उसे कोई मोह न हो पाया।

कमल के चरित्र को उसके निजी अनुभव और सामाजिक वातावरण को दृष्टि में रख कर अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। उपन्यास में वह निरन्तर परम्परा का विरोध करती है जो मानव के व्यक्तित्व के विकास में बाधा पहुँचाती और जीवन के सुख को नष्ट कर डालती है। दूसरों के साथ विचार-विनिमय के बीच में वह पवित्रता, ब्रह्मचर्य व संयम आदि जीवन के पुरातन आदर्शों का विरोध करती है। इन्होंने जीवन को नपुंसक व पंगु बना डाला है; इनके कारण जीवन कुरूप तथा घृणित बन गया है। वह लोगों की बातों का प्रतिवाद करती है और यह जताती है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति की अपेक्षा एक मानवीय संस्कृति अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह उन सभी प्राचीन संस्थाओं की निर्मम आलोचना करती है जिनका भारत के गौरवमय अतीत के पुजारियों ने गुण-गान किया है। अधिक से अधिक आत्माभिव्यक्ति उसके जीवन का आदर्श है। वह आधुनिक भारतीय समाज में नर-नारी के सम्मुख आने वाली इन समस्याओं पर वाद-विवाद ही नहीं करती, वरन् अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए उदाहरण भी देती है। उसकी आस्था वर्तमान के सुख में है, अतीत के गौरव में नहीं। यह दृष्टिकोण उस निराशा का परिणाम है जो मध्यवर्गीय सभ्यता की विशेषता है।

'शेष प्रश्न' परिसंवाद-प्रधान उपन्यास ही नहीं है, इसमें संघर्ष की

भी प्रचुरता है। घटनाएँ एक व्यवस्थित क्रम में चलती हैं और कुतूहल जो एक श्रेष्ठ कहानी का अनिवार्य तत्त्व है, उपन्यास के अंत तक बना रहता है। अनेक प्रासंगिक कथाओं को बिना किसी योजना के प्रस्तुत किया गया है। कमल और आशुबाबू उन्हें मिलाने वाली कड़ियाँ हैं। कमल सब से मोहक तथा रहस्यमय चरित्र है। उसने अपने पिता का जीवन अशान्त बना डाला है; आशुबाबू के समरस जीवन में वह तूफ़ान ला देती हैं; अजितकुमार की भावनाओं के साथ उसने खिलवाड़ किया है; उसने शिवनाथ के साथ विवाह करके फिर उसे त्याग दिया है, जिससे उसकी चंचल नारी-प्रकृति प्रकट होती है। उसका विश्वास है कि झूठा व धोखेबाज़ होने की अपेक्षा चंचल होना अच्छा है।

अजित के प्रेम-प्रसंग का उपन्यास में पूर्ण चित्रण नहीं हुआ। कमल के प्रति उसका अनुराग स्वाभाविक ही है; लेकिन शरत् ने उनके प्रेम के चित्रण में अपनी निजी शक्ति का परिचय नहीं दिया। यह प्रेम अपना परम्परागत संयम तथा माधुर्य लिए हुए नहीं है; यह तो सीधा, प्रकट, स्वच्छन्द एवं स्पष्ट है। अजित के प्रति कमल के प्रेम में न भावना है न जीवन ; उसमें कोई गहराई नहीं है। उसकी ओर बार-बार बढ़ने पर भी कमल कोई प्रबल वैवाहिक इच्छा प्रकट नहीं करती। यह खेल वह आगे ही खेल चुकी है। कदाचित् उसे दाम्पत्य जीवन में कोई उज्ज्वल भविष्य नहीं दीखता। जिस सुख को वह खोजती है वह जीवन की सुविधाओं की प्यास के बुझाने में है। वह विवाह से कतराती है जिसमें अनेक झंझट हैं। इसका अनुभव उसे हो चुका है। कलाकार और साथ ही लम्पट शिवनाथ ने उसके जीवन को दुःखमय बना ही डाला है। वैवाहिक जीवन में निराश हो जाने पर भी वह अपने उत्साह

तथा साहस को खो नहीं देती। शिवनाथ उसके मन को ढालने का प्रयत्न करता है, लेकिन इसमें सफल नहीं होता। उसका मन अटल है जो टूट भले ही जाए, पर झुकेगा नहीं।

मनोरमा भी इसी तरह स्वतंत्र तथा साहसी है। वह अपने पिता तक के दोष निकालने में नहीं चूकती। उसकी तीक्ष्ण आलोचना के बावजूद आशुबाबू उससे स्नेह करते हैं। उन्होंने अजित को अपना भावी दामाद चुन रखा है जो मनोरमा की ओर आकर्षित होता है, किन्तु अंत में उससे दूर हो जाता है। उसे शिवनाथ और मनोरमा के घनिष्ठ एवं कोमल सम्बन्ध का पता चल जाता है। शिवनाथ के स्वेच्छाचारी जीवन के प्रति घृणा प्रकट करते रहने पर भी मनोरमा अंत में उसके कामुक स्वभाव के वशीभूत हो जाती है। शिवनाथ पक्का लम्पट है जो अपने फंदे में एक और शिकार फाँस लेता है। उसने अपनी पहली पत्नी को सदा बीमार रहने के कारण त्याग दिया, एक नीच जाति की विधवा कमल को व्याह कर उसके साथ रहा और अंत में मनोरमा से विवाह कर लिया। इस बहुरंगी जीवन को एक तरह की कटुता तथा व्यंग्य के रंग में रँगा गया है। कमल उनके विवाह का विरोध नहीं करती। इसके विपरीत वह इससे प्रसन्न होती है। आशुबाबू भी उनके विवाह को स्वीकार कर लेते हैं। यह विवाह सामाजिक स्वतन्त्रता का विकृत रूप है। इस प्रकार कमल, शिवनाथ, अजित और मनोरमा उपन्यास का आधार बनते हैं।

राजेन्द्र, जो एक गौण पात्र है, अन्य पात्रों से भिन्न है। कमल ने उसे पहिचान लिया है। वह स्त्रियों की ओर सहज ही आकृष्ट नहीं होता। वह एक घुमक्कड़ तथा क्रांतिकारी है जो अपने को किसी के भी

आगे सहज ही प्रकट नहीं करता। कमल की मैत्री को वह न तो स्वीकार करता है और न ठुकराता ही है। यद्यपि वह आदर्शवादी है, तथापि उसका आदर्शवाद यथार्थोन्मुख है। उसकी तीव्र विनोद-भावना उसके बौद्धिक व नीरस जीवन में सरसता लाती है। परन्तु उसका विनोद कुछ रूखापन तथा कठोरता लिए रहता है। क्रांति में उसका अडिग विश्वास है। कमल के साथ अनेक बार तर्क-वितर्क करने पर भी उसे लगता है कि वह उसे आश्वस्त नहीं कर पाई। इसके विपरीत कमल उससे प्रभावित होती है।

उपन्यास में अकेले आशुबाबू ही ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने उपन्यास के परस्पर-विरोधी विचारों वाले लोगों को समझते हैं। उनका मन क्योंकि जीवन के बहु-विध अनुभवों से समरस हो गया है, अतः वह विभिन्न आचार-विचार के लोगों को पहचानते हैं। लम्पट शिवनाथ, चिर-ब्रह्मचारी हरेन्द्र, क्रांतिकारी राजेन्द्र, भावुक प्रेमी अजित, पवित्र विधवा नीलिमा और समाज-विद्रोहिणी कमल—सभी को उनसे स्नेह-सा हो जाता है। उन्हें इन सब का आदर व प्रेम प्राप्त है। दूसरों को समझने व पहचानने की विलक्षण शक्ति और मन की समरसता उनके निजी गुण हैं। वह इन सब के मन पर विजय पा लेते हैं। दूसरों की आलोचना वह कभी नहीं करते; फलस्वरूप उनकी आलोचना भी शायद ही कोई करता हो। कमल एक बार उनका अपमान करती है, किंतु वह उसे क्षमा कर देते हैं। राजेन्द्र से उनकी एकाध बार ही भेंट हुई है, फिर भी वह उन्हें अच्छा लगता है। अपनी पाश्चात्य शिक्षा के बावजूद उन्हें भारतीय संस्कृति से गहरा अनुराग है। उपन्यास के बहु-पत्नीक वातावरण में वह एक पत्नी की प्रथा में विश्वास रखने वाले हैं।

धन-ऐश्वर्य के होते हुए उन्होंने पुनर्विवाह नहीं किया। अपनी स्वर्गीया पत्नी की स्मृति के प्रति गहरी श्रद्धा, जीवन के व्यसनों के प्रति उपेक्षा और एक प्रकार की उदासीनता उनकी अपनी विशेषताएँ हैं। अपनी पुत्री मनोरमा के विवाह से तनिक उद्विग्न होने के बाद वह उसे तुरंत क्षमा कर देते हैं। और अपनी मानसिक शान्ति को वास्तव रूप में भंग नहीं होने देते। जीवन की घोर घटाओं को भेदने वाली उनकी मुसकान कहावत बन गई है। वह अपने आस-पास हर्ष एवं प्रेम की किरणें बिखेरते हैं। वह उपन्यास के वाद-विवाद से तप्त जगत के बढ़े हुए तापमान को घटाने का काम करते हैं।

'शेष प्रश्न' शरत् की रचनाओं के विकास की अन्तिम कड़ी है जिसमें कला दब-सी गई है। अपने कथा-साहित्य की अन्तिम कोटि में लेखक ने संदेश को ही महत्त्व देना चाहा है। श्रीकान्त, सतीश, रमेश, सुरेन, राजलक्ष्मी, सावित्री, किरण, रमा, भारती, अचला, माधवी, देवदास, पार्वती आदि महान चरित्रों तथा अन्य दुःखी नर-नारियों की सृष्टि कर चुकने पर लेखक कमल के मुख से उनके दुःख एवं विषाद के कारणों की व्याख्या करता है। कमल अपने विद्रोही स्वभाव से भारत के मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं को सुलझाती है। वह दो विवाह कर चुकी है, अब तीसरा करने से इनकार करती है, सो इसलिए नहीं कि वह उस पुरुष से प्रेम नहीं करती, वरन् इसलिए कि विवाह से जीवन की समस्या हल न हो पाएगी। जिन समस्याओं व प्रश्नों को लेखक ने अपनी आरम्भिक कृतियों में उठाया है, उनका अन्तिम समाधान कमल के दृष्टिकोण से प्रकट हो जाता है। विषय के प्रतिपादन में कला की कमी को तर्क ने पूरा

किया है। उपन्यास का स्पष्टतः सैद्धान्तिक स्वरूप विकास एवं प्रगति में लेखक की आस्था का परिचायक है। निराशावाद के युग में और १९३२ के राजनीतिक आन्दोलन के विफल हो जाने पर शरत् सामाजिक प्रगति एवं विकास-सम्बन्धी अपने विचारों के पुनर्परीक्षण का प्रयास करते हैं। वर्तमान समाज-व्यवस्था के प्रति उनके विद्रोह तथा असंतोष का स्वर अधिक प्रखर हो जाता है। धर्म, राजनीति और समाज के क्षेत्रों में होने वाले मूल परिवर्तन के प्रति शरत् पूरी तरह सजग हैं। वह जिस समाज-व्यवस्था में जन्मे-पले उसके मोह और अपनी आस्था की अधिकारिणी नवीन विचारधारा के ज्ञान की दुविधा में पड़े ही रहते हैं। इस द्वन्द्व ने उनके कलात्मक दृष्टिकोण और साहित्य-रचना पर बुरा प्रभाव डाला है। अतएव वह अपने उपन्यासों की अन्तिम श्रेणी में परम्परा तथा परिवर्तन के बीच उस कलात्मक संतुलन को फिर से प्रतिष्ठित नहीं कर पाए जो उनके आरंभिक उपन्यासों में उनकी सृजनात्मक प्रतिभा एवं कला का आधार रहा है।

———

तीसरा अध्याय

कहानियाँ (प्रथम श्रेणी)

साहित्य के एक विशिष्ट अंग के रूप में कहानी का विकास अभी अभी हुआ है, यद्यपि प्राचीन भारतीय साहित्य ऐसी गाथाओं से सम्पन्न है जिनके विषय और शैली का वैविध्य चकित कर देने वाला है। कहानी प्राग् ऐतिहासिक काल से कल्पित कथा, रूपक अथवा रोमांस के रूप में चली आ रही है। उपनिषदों में कोई शिक्षा देने अथवा सर्वसाधारण की समझ के अनुकूल दर्शन का कोई तत्त्व समझाने के उद्देश्य से रूपकों का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है। पुरातन महाकाव्यों का उद्भव आशापूर्ण है जिनमें विगत काल की वीर-गाथाएँ धारावाहिक तथा सजीव रूप में मिलती हैं। ये गाथाएँ चारणों के हाथों से निकल कर पंडितों के अधिकार में आ गईं और पंडितों ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार प्राचीन महाकाव्य के ढाँचे में धर्म, दर्शन तथा राजनीति-सम्बन्धी अनेकों परस्पर-विरोधी आख्यान ठूँस दिए जो प्रधान विषय से साधारणतः मेल नहीं खाते। इन सभी आख्यानों का स्वर नैतिक ही नहीं, उपदेशात्मक भी है। यह उपदेशात्मक स्वर आधुनिक कहानी में मुखरित होता रहता है जिसका क्षेत्र विस्तृत हो गया है। आधुनिक भारतीय साहित्य में एक विशिष्ट साहित्यिक रचना के रूप में कहानी की दृढ़ स्थापना हो चुकी है। इसका कारण कोई संयोग नहीं, वरन् कुछ सांस्कृतिक, सामाजिक, काल्पनिक

तथा प्रगतिशील शक्तियों ने मिल कर इसके विकास में योग दिया है। फलस्वरूप यह युग की सबसे आवश्यक एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई है। इसकी इतनी लोकप्रियता अनेक सहयोगी कारणों का परिणाम है। आधुनिक जीवन की व्यस्तता जिसके कारण मध्यवर्गीय लोगों में लम्बी-लम्बी कथाएँ अथवा उपन्यास पढ़ने का धैर्य नहीं है, पत्रिकाओं का विस्तृत विकास जो मध्यवर्गीय साहित्य का सर्वप्रिय माध्यम हैं, साहित्य के रूप की नवीनता जिसका प्रयोग करने को लेखक उतावले हैं और अंत में उपन्यास का स्थान लेने का इसका अधिकार—ये सभी इनमें सम्मिलित हैं। बहुत-से भारतीय लेखक कभी कभी अपनी चित्तवृत्ति को कहानी का साकार रूप दे देते हैं। समूचा जीवन तथा अनुभव इसका क्षेत्र बन गया है। विदेशी कहानी-लेखकों के ज्ञान और रचनाओं पर आधारित इसकी शैलीगत परिपक्वता का एक उच्च तथा सुकुमार स्तर पुष्ट हो रहा है। आज की भारतीय कहानी अपने वैविध्य के लिए उल्लेखनीय है। यह स्थिति, प्रसंग, चरित्र-चित्रण अथवा विवरण—इन सभी रूपों में मिलती है। वस्तुतः यह हरेक गद्य-लेखक की कुशलता व प्रतिभा की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई है। इसमें एक स्थायी तरलता विद्यमान है जो पकड़ में नहीं आती। जब तक बंकिमचंद्र और उनके समकालीन लेखकों के युग में गद्य का रूप आलंकारिक रहा, तब तक कहानी के पुनर्जीवित तथा विकसित होने की सम्भावना बहुत कम थी। कहानी का सुकुमार एवं कोमल ढाँचा शब्दाडम्बर का बोझ वहन नहीं कर सकता। आदि मध्यवर्गीय लेखक की दृष्टि काल्पनिक धारणाओं और सुधारवादी भावनाओं से धूमिल पड़ी हुई थी। अतः कहानी बोझिल

प्रवचनों, उपदेशात्मक विचारों, जटिल मीमांसाओं और बाह्य-आलंकारिकता, जो आदि मध्यवर्गीय लेखकों की विशेषताएँ हैं, के भार को उठा न सकी।

शरच्चन्द्र जो बाद के मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखते हैं, इस प्रकार की धारणाओं से मुक्त हैं। वह मुख्यतः उपन्यासकार हैं जिन्होंने कहानी को अभिव्यक्ति के पूरक व अनन्य माध्यम के रूप में अपनाया है। चूँकि उनकी अभिव्यक्ति का मुख्य साधन उपन्यास है, अतः कहानी की टेकनोक पर उनका अधिकार नहीं हो पाया। अपवाद के रूप में कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिन्हें साहित्य के इस नवीन रूप की दिशा में ऐकांतिक सफलताएँ कहा जा सकता है। उपन्यासकार होने के नाते उनमें कसावट का अभाव है जो कहानी में अभिव्यक्ति का प्राण है। इसके परिणाम-स्वरूप उनकी कुछ कहानियाँ बड़ी कहानी अथवा लघु उपन्यास का ठेठ उदाहरण बन कर रह गई हैं। कहानी को उपन्यास का छोटा रूप अथवा एक ऊँचे वृक्ष का कुण्ठित विकास मानने की प्रवृत्ति उनमें मिलती है जिसे उन्होंने कहानी की दिशा में किये गए अपने कुछेक प्रयासों में प्रकट किया है। उनकी कहानी-कला को ढालने में पत्रकारी का भी बड़ा हाथ रहा है। इसने उनके साहित्य के साध्य और साधनों को रूप दिया है। शरत् उपन्यास में इतने रमे रहते हैं कि उन्होंने साहित्य के एक विशिष्ट अंग के रूप में कहानी की टेकनीक को पुष्ट करने में अपने को गम्भीर रूप में कभी नहीं लगाया। अत्यन्त सावधानी से चुने गए एक-एक प्रसङ्ग का सूक्ष्म चित्रण अथवा जटिल वर्णन करने से वह कभी नहीं चूकते। संतुलन जो कहानी की चरम कसौटी है उनकी कहानियों में अनावश्यक प्रसङ्गों, वाक्यों अथवा शब्दों

की भरमार से टूट गया है। ऐसा होते हुए उन्होंने कहानी की दिशा में अनेक सफल प्रयास किए हैं जो उन्हें एक ऐसे कुशल कहानीकार के पद पर ला बिठाते हैं जिसने उसके क्षेत्र को विस्तृत बना दिया है।

शरत् की कहानियों को सहज ही दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। यह विभाजन युक्ति-संगत नहीं है। यह किसी ऐतिहासिक विकास अथवा काल-क्रम के आधार पर नहीं किया गया, प्रत्युत इन कहानियों में उपलब्ध शैलीगत विकास व परिपक्वता के परिमाण पर आधारित है। प्रत्येक श्रेणी की कहानियों का विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा जिसमें उस मध्यवर्गीय जीवन की झाँकी मिलती है जिसका शरत् ने अपने उपन्यासों में इतना व्यापक चित्रण किया है। प्रथम श्रेणी की कहानियों में एक सुविकसित व प्रौढ़ शैली देखने को मिलती है। प्रभाव की एकरूपता अथवा स्वर की अनुरूपता जो कहानी की मुख्य विशेषता है इन सभी कहानियों में मिलती है। 'महेश' उनमें से एक है। यह एक पालतू बैल की कहानी है जो देहात के एक निर्धन जुलाहे की जीविका चलाता है। जुलाहा भूमि जोत कर बीज बोता है, परन्तु उसका फल स्वयं नहीं पाता। कहानी का घटनास्थल काशीपुर नाम का गाँव है। गफूर और उसकी इकलौती बेटी घास-फूस की एक टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहते हैं। यही उनका सर्वस्व है। बैल उनकी एक-मात्र सम्पदा व आशा है। उसे भर-पेट खिलाने के लिए बाप-बेटी स्वयं आधे भूखे ही रह लेते हैं। यह भूखों मरने तथा मर-मर कर जीनेवाली बात है। वह पशु इसे सहन नहीं कर सकता और जीने की प्रेरणा उसे गाँव के ज़मींदार के बाग में खींच ले जाती है जहाँ वह फूल-पौधों को उजाड़ देता है। इसके परिणाम-स्वरूप धनी ज़मींदार और निर्धन

असामी के बीच झगड़ा हो जाता है जिसमें वह गरीब क्रोध की झोंक में आ कर उसी बैल को मारने लगता है जिसे वह दिल से चाहता है। महेश वहीं धराशायी हो जाता है। गफूर जीविका की खोज में एक पटसन के कारखाने में चला जाता है और उस पवित्र पशु की हत्या करने में उसने जो पाप किया है, उसके प्रायश्चित्त के लिए अपना एक-मात्र बर्तन छोड़ जाता है। वह निराश हो कर पुकार उठता है कि भगवान उस ज़मीदार को दंड दें जिसने उसके लाड़ले बैल को दाने पानी से वंचित रखा है। यह एक किसान का शाप है जो सम्भव है आगे चल कर भविष्य-वाणी सिद्ध हो। यह कहानी देहात में होने वाले असामियों के निर्मम शोषण की कटु आलोचना है। ज़मीदार के अमानुषिक व्यवहार का संकेत तथा लक्षणा द्वारा भंडाफोड़ किया गया है। सामग्री की अद्भुत कसावट और कलात्मक एकता कहानी की विशेषताएँ हैं। यह कहानी साहित्यिक प्रवीणता और कला की दृष्टि से सुगढ़ रचना है।

'एकादशी वैरागी' एक उत्कृष्ट कहानी है जिसमें एक ऐसे महाजन का चरित्र-चित्रण किया गया है जो एक निर्दय शोषक है, लेकिन मानवीय भावनाओं से सर्वथा शून्य नहीं है। कुछेक कुशल एवं कलात्मक रेखाओं द्वारा उसके दोरंगी चरित्र का यथार्थ चित्रण किया गया है। एकादशी मध्यवर्गीय समाज द्वारा बहिष्कृत अपनी 'पतित' सौतेली बहन को आश्रय दे कर निजी प्रतिष्ठा का महान त्याग करता है। धन का पुजारी होते हुए उसमें एक दुःखी लड़की के जीवन तथा मान की रक्षा करने की पर्याप्त मनुष्यता विद्यमान है। एक अन्य पात्र जिसे उसके विपरीत दिखाया गया है धर्म और पुरातन आस्था का ठेकेदार है

जिसका प्रचार वह स्नातक होने के बाद दुगुने उत्साह से करता है। अपूर्व अपने धार्मिक आडम्बर के बावजूद अत्यन्त कट्टर-पंथी है जो एक पतित तथा जाति-भ्रष्ट लड़की के अपवित्र हाथों से एक पानी का गिलास लेने में अपने को 'दूषित' अनुभव करता है। महाजन के उग्र स्वभाव को कहानी के प्रथम भाग में विशदता से अंकित किया गया है। निर्दयी महाजन को बाद में अत्यन्त ईमानदार एवं दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है। यह कहानी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उत्कृष्ट है जिसमें कहानी के अन्य तत्वों को महाजन के चरित्र के अधीन करके स्वर की एकरूपता को मुखरित किया गया है।

'तस्वीर' एक उच्च कलात्मक स्तर की कहानी है। इसमें सामग्री की विलक्षण कसावट, दो तरुण प्रेमियों के अन्तर में पैठने वाली पैनी दृष्टि और कथोपकथन की नाटकीय विशेषता देखने को मिलती है। माँडले को इसका घटना-स्थल बनाया गया है। माशोई एक ज़मीदार की युवती, रूपवती, धनी तथा कुमारी लड़की है। बा-थिन उसका बचपन का साथी है जो अपने स्वर्गीय पिता का ऋण चुकाने के लिए चित्रकारी का काम करता है। माशोई भी पिता से वंचित हो गई है। वह बा-थिन से मैत्री जोड़ने की चेष्टा करती है लेकिन वह उसकी नितान्त उपेक्षा करता है। वह अपनी कला की साधना में लीन रहता है। उसके आचरण से माशोई मर्माहत-सी हो उठती है। चाहे वे एकसाथ खेले, लड़े-झगड़े और एक दूसरे से स्नेह करते आए हैं, फिर भी बा-थिन उसके प्रति स्पष्ट रूप से उदासीन ही रहता है। उसकी ओर अनेक बार आकर्षित होने पर भी माशोई उसे पूर्ववत् उदासीन ही पाती है। वह उसे सचेत करता है कि वह रसातल की ओर बढ़ रही है तथा

उसे इससे सावधान रहना चाहिए। अन्त में माशोई उसे वह पूँजी लौटाने को विवश करती है जो उसके पिता ने उसके पिता से ऋण में ली थी। यह उसके विफल प्रेम को प्रकट करने का साधन है। बा-थिन ऋण-मुक्त होने के लिए अपना सब-कुछ बेच डालता है। वह रुग्णावस्था में उसकी धन-राशि लौटाने के लिए उसके पास जाता है। इतना ही नहीं, वह आजीवन उसके साथ बना रहने के लिए राजी हो जाता है। उनका मिलन बड़े कलात्मक तथा यथार्थ ढंग से दिखाया गया है। बा-थिन को देवी का मुख चित्रित करने के स्थान पर अनजान में अपनी प्रेयसी का चित्र बनाते दिखा कर कहानी को ललित रूप दिया गया है। वह अपने निगूढ़ व अव्यक्त प्रेम की तीव्रता को प्रकट करता है जो मध्यवर्गीय प्रेम की अपनी विशेषता है। मध्यवर्गीय समाज के प्रेम की धारणा तथा चित्रण पर एक पृथक् अध्याय में विचार किया गया है। इन प्रथम श्रेणी की कहानियों में लेखक ने शैलीगत परिपक्वता और साहित्यिक कुशलता का सुन्दर परिचय दिया है। सामाजिक उद्देश्य अथवा सामाजिक आलोचना का इनमें संकेत-मात्र मिलता है; उसे कहीं भी प्रत्यक्ष व स्पष्ट रूप में नहीं दिखाया गया। कहानी एक ही दिशा में सीधी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है और द्रुतगति से उस तक पहुँच जाती है। इसे पढ़ते-पढ़ते जी ऊबने नहीं लगता क्योंकि इसमें शब्दों का जाल बिछाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। किसी चरित्र का विस्तार से चित्रण करने अथवा किसी स्थिति का समाधान करने के लिए रुकने का कोई प्रयास इसमें नहीं मिलता।

कहानियाँ (द्वितीय श्रेणी)

द्वितीय श्रेणी की कुछ कहानियों में शरत जीवन के व्यापकतर चित्रण की साध पूरी करने की चेष्टा करते हैं, लेकिन उनके सम्मुख चित्रपट अत्यंत सीमित है। अतः वह संतुलन तथा सहकारिता को खो बैठते हैं जो कहानी के प्राण हैं। कथानक का प्रासंगिक विधान उनकी रचनाओं के साहित्यिक मूल्य को कम कर देता है और शिथिल चरित्र-चित्रण उनकी कला के प्रयोजन को ही विफल बना देता है। पत्र-पत्रिकाओं की-सी शैली लोकप्रिय पत्रिकाओं के मध्यवर्गीय पाठक को निःसन्देह सन्तुष्ट करती है परन्तु इससे कला का उच्चतम आदर्श अर्थात् जीवन का यथातथ्य चित्रण नष्ट हो जाता है। उनके भीतर का उपन्यासकार यदा-कदा अपने को प्रकट करता है; किन्तु लेखक अपनी शैली को प्रौढ़ बनाने तथा कहानी-कला को विकसित करने के लिए जूझता हुआ जान पड़ता है। वह निश्चय ही सही मार्ग पर हैं, क्योंकि वह अत्यधिक विस्तार करके उबाने के स्थान पर लक्ष्य और उत्तेजना की ओर तीव्र प्रवृत्ति दिखाते हैं। शरच्चन्द्र एक महान कहानीकार के रूप में उभरने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी सृजनात्मक प्रतिभा की झलक प्रथम श्रेणी की कहानियों में मिल ही चुकी है। द्वितीय श्रेणी की कुछ कहानियों के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि वह अपरिपक्व तथा प्रयोगकालीन अवस्था से गुज़र रहे हैं।

'अनुपमा का प्रेम' एक प्रेम कहानी है। अनुपमा जो कहानी की केन्द्र है, प्रेम-कथाओं को पढ़ कर अपनी भूख को शान्त करती है। उसने उपन्यासों में से समस्त प्रेम, माधुरी, शोभा, सुन्दरता तथा तृषा

बटोर ली है। वह एक माधवी-लता के समान है जो पूर्ण विकसित हो कर किसी वृक्ष का आलिंगन करने की बाट देख रही है। सुरेश वह वृक्ष अथवा उसके प्रेम का पात्र है। यह प्रेम क्षणिक व चंचल है जो प्रेमी-जनों की पकड़ में न आ कर उनके हृदय को जलाता तथा आकुल बनाता है। विवाह के दिन सुरेश उस भावुक नायिका के मायाजाल से मुक्त होने के लिए अदृश्य हो जाता है जो उसके प्रेम में पागल है। इससे लड़की के माता-पिता के लिए भद्दी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो उसका विवाह एक बूढ़े विधुर के साथ कर देते हैं। अनुपमा का जीवन पीड़ा एवं निराशा से भर उठता है। विधि के एक ही निर्मम प्रहार ने उसके जीवन के रंगीन सपनों को छिन्न-भिन्न कर डाला है। एक और प्रहार उसे वैधव्य की दीन-हीन अवस्था में पहुँचा देता है। उसके वृद्ध पति का देहावसान हो चुका है। उसे मृत्यु के अतिरिक्त कोई चारा नहीं दीखता। वह नदी में कूद कर आत्म-हत्या का प्रयास करती है, लेकिन एक व्यक्ति जिसने एक बार उससे प्रेम किया था उसे बचा लेता है। उपसंहार का अति-नाटकीय रूप समूचे कथानक के रोमांचकारी रूप के अनुकूल है। वर का आश्चर्यजनक लोप, बूढ़े विधुर की आकस्मिक बीमारी तथा मृत्यु और अनुपमा के जीवन की रक्षा करने के लिए एक और व्यक्ति का चमत्कारपूर्ण आगमन—इन सब को जीवन का अतिशयोक्तिपूर्ण व मिथ्या चित्रण करने के लिए उसी साँचे में ढाला गया है। कठोर यथार्थता कहानी में कहीं नहीं मिलती। छिछले प्रेम की अस्थिरता को प्रकट करने के लिए अनुपमा के चरित्र का अतिरंजित चित्रण किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि वैवाहिक जगत में स्वतन्त्रता भ्रम-मात्र है। यह बात वैवाहिक समाज के अतिरिक्त मध्यवर्गीय समाज के

सम्बन्ध में भी ठीक उतरती है।

'दर्प-चूर्ण' की रचना एक सामाजिक उद्देश्य से की गई है। एक आधुनिक लड़की सेवा एवं त्याग के महत्त्व को अनुभव करने के लिए बाध्य हो जाती है जो पुरातन अस्था के आधार थे। इन्दु नवीन समाज-व्यवस्था की उपज है। वह एक धनी व अभिमानी लड़की है जो नर-नारी की समानता के लिए लड़ती है। उसका विवाह एक मितभाषी, स्थितप्रज्ञ तथा सहृदय व्यक्ति से हो गया है, लेकिन वह उस पर इतना अधिकार जमा लेना चाहती है कि वह उससे विरक्त-सा हो जाता है। इंदु पति की विरक्ति एवं उदासीनता की भावना को भाँप लेती है और उससे अपने मन की बात प्रकट करने का आग्रह करती है। वह चुप रहना ठीक समझता है और इससे वह और भी खीझ उठती है। एक अन्य पतिव्रता नारी के चरित्र की उद्भावना उसके विपरीत दिखाने के लिए की गई है। विमला पति-पत्नी के बीच स्वामी-सेवक के सम्बन्ध का प्रतिनिधित्व करती है। इन्दु अन्त में बदल जाती है और जीवन के प्राचीन साँचे में ढल जाती है। जिस मिथ्या अहंकार की भावना को वह इतनी देर से परिपुष्ट करती आई है वह संकट के क्षण में विलुप्त हो जाती है। इसी सामाजिक उद्देश्य को स्थिर चरित्र-चित्रण तथा युक्ति-संगत वस्तु-विधान का परित्याग करके कहानी में अंकित किया गया है। दो परस्पर-विरोधी सखियों के बीच चलने वाला वार्त्तालाप अवास्तविक-सा जान पड़ता है, अतः यह कहानी ओज व जीवन से रहित है। मध्यवर्गीय समाज में नारी की वर्तमान स्थिति एक महत्त्वपूर्ण समस्या है, लेकिन प्रस्तुत कहानी में इसका अपूर्ण व क्षीण चित्रण हुआ है।

'प्रकाश और छाया' में प्रेम-समस्या को लिया गया है। यज्ञदत्त प्रेम और कर्त्तव्य के बीच डोल रहा है। सुरमा जो एक विधवा है तथा जिसे प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं उसकी श्रद्धा एवं प्रेम की पात्री है। वे एक अस्थिर व क्षण-भंगुर आनन्द से पुलकित हैं। सुरमा विधवा होने के कारण उससे विवाह नहीं कर सकती। मध्यवर्गीय समाज इस सम्बन्ध की अनुमति नहीं देता। न ही वे इस रूढ़ि का खंडन करने का साहस रखते हैं। वह इस बात को अनुभव करती है कि यज्ञदत्त उसके लिए अपना जीवन व्यर्थ ही गँवा रहा है। वह उसके लिए कोई उपयुक्त बहू खोजने के लिए उतावली हो उठती है। यज्ञदत्त का विवाह होते ही उसका उत्साह उदासी में परिणत हो जाता है। उसे लगता है कि वह अपनी पत्नी की ओर आकृष्ट होता जा रहा है। इससे उसका मन निराशा से भर उठता है। उधर यज्ञदत्त भी यह अनुभव करता है कि उसने उतावलेपन में विवाह करके और अवकाश के समय अनुताप करके भारी भूल की है। पति-पत्नी एक ही घर में अलग-अलग रहने लगते हैं, परंतु वह इस खेल को अधिक देर तक खेल नहीं पाता। पत्नी बीमार पड़ जाती है और दो प्रेमियों के मिलन के लिए चल बसती है। कहानी में से अनावश्यक पात्र को निकालने के अभिप्राय से लेखक इस साधन को बहुधा अपनाता है। एक विधवा को प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं। यह लेखक का प्रिय विषय है जिसे अनेक कहानियों तथा उपन्यासों में अपनाया गया है। कहानी में पात्रों के कुछ गूढ़तम भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कथोपकथन अत्यन्त नाटकीय एवं कसे हुए हैं।

'अनुराधा' में मध्यवर्गीय समाज की विवाह-समस्या को लिया गया

है। अनुराधा एक लड़की की विवाह-योग्य अवस्था की परम्परागत सीमा को लाँघ चुकी है। वह तेईस वर्ष की जवान लड़की है। उसके माता-पिता का देहान्त हो चुका है। इस विपरीत तथा रूढ़िग्रस्त संसार में उसका एकमात्र सहारा उसका सौतेला भाई है। वह एक गिरवी रखे हुए मकान में रहती है जिसमें उसके पिता-पितामह रहते आए हैं। नवयुवक ज़मींदार व मकान-मालिक विजय उसे घर खाली करने का आदेश देता है। एक वृद्ध महाशय जो उससे विवाह करने को तत्पर हैं उसकी वकालत करते हैं। विजय को उन दोनों की आयु का अन्तर जान कर चोट पहुँचती है। वह यह जान कर स्तब्ध रह जाता है कि अनुराधा इस विवाह से सहमत है। वह उसे अपने घर में आश्रय दे कर इस सम्बन्ध को तोड़ने का प्रयत्न करता है। अनुराधा सेवा तथा प्रेम के द्वारा उसे पा लेती है। उसके गुणों पर विजय रीझ उठता है, परंतु उसे एक ग्रेजुएट लड़की से विवाह करने के लिए बाध्य किया जाता है। अनुराधा उसकी पत्नी नहीं बन सकती। दोनों के बीच एक अव्यक्त एवं गहरी घनिष्टता बढ़ने लगती है। अनुराधा विजय के घर के काम-काज से अपने को एकाकार कर देती है और विजय उसकी सुकुमार देख-भाल के वशीभूत हो जाता है। विजय एक कड़े सामाजिक नियम से बँधा हुआ है जो उच्च मध्यवर्ग के जीवन को शासित करता है। अनुराधा देहात की लड़की है जो कभी किसी स्कूल अथवा कालेज में नहीं गई; वह कभी किसी पार्टी व सामाजिक उत्सव में सम्मिलित नहीं हुई। दोनों प्रेमी बिछुड़ जाते हैं। इसी बीच विजय यह जान कर उल्लसित हो उठता है कि उस ग्रेजुएट लड़की का विवाह किसी अन्य व्यक्ति से होने वाला है। अब अनुराधा उसी की हो जाएगी। यह बात कहानी

के अन्त में स्पष्ट हो जाती है। कहानी का अन्त अस्वाभाविक-सा जान पड़ता है। भावोत्तेजना के प्रति पाठक की तीव्र उत्सुकता को शान्त करने के लिए इस रोचक आश्चर्य की उद्भावना कहानी के सातवें भाग में की गई है। यह कहानी पत्र-पत्रिकाओं की शैली की ठेठ उपज है। इसमें पाठक के सम्मुख समग्र जीवन को समेट कर रखने का प्रयास किया गया है। कहानी बहुत से भागों में विभक्त है; प्रत्येक भाग अथवा दृश्य को बड़े हलके ढंग से छुआ गया है। कथानक की दृश्यगत रचना से पत्रकारी का प्रभाव लक्षित होता है। अनुराधा कहानी की केन्द्र है। उसकी सेवा एवं त्याग की भावना को प्रकट करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रसङ्गों को जुटाया गया है। शरत् ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि दरिद्रता तथा असंस्कृति के पर्दे में पावन हृदय स्पंदित हो रहा है। विजय उसके आन्तरिक महत्त्व को जानता है, किन्तु वह ग्रेजुएट लड़की के साथ अपनी सगाई का विरोध करने का साहस नहीं करता। अन्त में विधि के विधान से वह वैवाहिक विनाश से बच जाता है।

'अंधकार में आलोक' प्रथम-दर्शन के प्रेम की कहानी है। एक युवती तथा रूपवती लड़की एक धनी ज़मीदार के इकलौते बेटे के मन को मोह लेती है। प्रेम के दृश्य का अभिनय एक नदी के किनारे होता है जहाँ वे लगभग रोज़ ही भेंट करते और नयनों की भाषा में बातें करते हैं। लड़की के रूप और यौवन ने ज़मीदार के लड़के को पूरी तरह वश में कर रखा है। उनमें एक गहरी घनिष्टता बढ़ने लगती है। कुछ दिन उसे नदी-किनारे न पा कर वह युवक एक नौकरानी की सहायता से उसके घर का पता लगा लेता है। यह जान कर उसके

आश्चर्य की सीमा नहीं रहती कि वह एक नर्त्तकी है जिसके पेशे को समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। बिजली अपने वास्तविक रूप को प्रकट करती है और एक सच्चरित्र नारी होने का दावा करती है। वह युवक उसे 'पतित नारी' समझता है जो उसके प्रेम के योग्य नहीं है। वह विरक्त हो कर उसे छोड़ जाता है और इससे उस नर्त्तकी के जीवन का रूप ही बदल जाता है। इसी बीच में युवक सत का एक अन्य लड़की से विवाह हो जाता है। चार वर्षों के व्यवधान के बाद वह एक सामाजिक समारोह के उपलक्ष में बिजली को निमंत्रित करता है। उसे एक नर्त्तकी के नाते एक बालक के जन्मोत्सव में आए हुए अतिथियों का मनोरंजन करना है। उसकी पत्नी से परिचय कराये जाने पर बिजली एक उदात्त चरित्र को प्रकट करती है। वह जानती है कि उसे अपमानित करने के अभिप्राय से ही सत ने उसे बुलाया है। कहानी का अन्तिम भाग प्रधान विषय से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। पतित नारी का चरित्र लेखक का अत्यन्त प्रिय विषय है। इसने शरत् को इतना अभिभूत कर रखा है कि वह विभिन्न सामाजिक प्रसंगों व परिस्थितियों में उसे दुहराने से नहीं अघाते। प्रस्तुत कहानी में उन्होंने असम्बद्ध प्रसंगों के द्वारा इस मूल चरित्र का चित्रण करने का प्रयास किया है।

'बोझ' में शरत् ग्रामीण समाज में बाल-विवाह की समस्या का निरूपण करते हैं। लड़का मैट्रिक का विद्यार्थी है और लड़की मुश्किल से दस वर्ष की है। लड़के की माँ इस कार्य को सम्पन्न करके फूली नहीं समाती। सरला पति की छोटी-छोटी आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने लगती है और वह अपने को पूर्ण-रूप से उसी पर छोड़ने लगता

है। उसे अपने मायके जाने के लिए उससे विदा होना पड़ता है और उसकी अनुपस्थिति में वह विक्षिप्त-सा हो जाता है। परीक्षा का भय उसके मन को खाए डालता है। उसे सरला को लिवा ही लाना होगा। इसी बीच सरला कुछ दिन बीमार रह कर स्वर्ग सिधार जाती है। इससे लेखक की यह धारणा पुष्ट होती है कि बाल-विवाह एक बोझ तथा अभिशाप है। वह लड़का परीक्षा में फेल हो जाता है और एक अन्य रूपवती लड़की के साथ उसका विवाह हो जाता है। वह अपनी पूर्व पत्नी को भूल नहीं सकता। नलिनी एक भारी बोझ है जिसे वह उठा नहीं सकता। उसकी पहली पत्नी सदैव उसके साथ बनी रहती। उसके साथ वह जैसा भी व्यवहार करता वह उसी में सुख मानती। नलिनी और ही धातु की बनी हुई है। वह अपनी किसी सखी से मिलने जा कर काफी रात बीते घर लौटती है। यह पति को व्यग्र करने के लिए पर्याप्त है। वह उसे छोड़ जाती है, लेकिन वह उसका समाचार जानने के लिए व्याकुल हो उठता है। उनकी मनो-दशाओं को शरत् ने विशदता से अंकित किया है। नलिनी भी परलोक की राह लेती है और पति के हृदय में एक गहरा रिक्त स्थान छोड़ जाती है। इस शून्य स्थान को भरने के लिए वह तीसरा विवाह कर लेता है। यह एक और बोझ है। तीसरी पत्नी के साथ उसका मन नहीं मिल पाया। उनके बीच एक दूरत्व की भावना बढ़ने लगती है और वे जीवन में फिर कभी न मिलने के लिए बिछुड़ जाते हैं। इस प्रकार यह कहानी बाल-विवाह और उसके दुष्परिणामों पर प्रकाश डालती है। एक ही भूल अथवा एक ही कदम डगमगाने का परिणाम दुःखद हुआ है। चरित्र-चित्रण क्षीण और वस्तु-विधान प्रासंगिक है, फिर भी सामा-

जिक उद्देश्य इस कहानी पर छाया हो रहता है जो पत्र पत्रिकाओं के ढंग की है।

'बिन्दो का लल्ला' एक मध्यवर्गीय परिवार में दो स्त्रियों के जीवन से सम्बन्धित अनेक उलझनों, तुच्छ स्पर्धाओं तथा क्षुद्र झगड़ों से पूर्ण घरेलू जीवन का आश्चर्यजनक रूप से यथार्थ चित्र है। बिन्दो उनमें से एक है। वह असाधारण सुन्दरी है जो अपने विवाह में दस हज़ार का नकद दहेज लाई है। इससे सम्मिलित परिवार में ईर्ष्या की आग भड़क उठती है। उसके रूप एवं धन ने उसकी जेठानी को अशान्त बना रखा है, इसीलिए वह उसकी परम्परागत उच्च पदवी को चुनौती देती है। बिन्दो अत्यधिक चिड़चिड़ी एवं असहिष्णु प्रकृति की नारी है। उसका लाड़ला बेटा लल्ला उसके लिए तथा परिणामस्वरूप उस सम्मिलित परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भी बहुत-सी उलझनें पैदा कर देता है। वही उसकी आशा, उसका जीवन तथा समूचा संसार है। बिन्दो उसी में इतनी तन्मय रहती है कि उसके लिए घर में सभी की उपेक्षा ही नहीं अपमान भी करती है। एक ऐसी नौबत आ पहुँचती है जब दोनों भाई अलग-अलग रहने को विवश हो जाते हैं। बिन्दो को ज्वर आने लगता है और उसकी बीमारी दोनों परिवारों में मेल करा देती है। इस लम्बी कहानी में बिन्दो का चरित्र-चित्रण सूक्ष्म ढंग से किया गया है। शरत् जो मध्यवर्गीय परिवार के लोगों की निकट जानकारी रखते हैं, उनके बात-चीत करने के खास लहजे तक को प्रकट कर देते हैं। चूँकि कथानक सूक्ष्म एवं क्षीण है अतः संवाद सारी कहानी में पाठक की रुचि एवं उत्सुकता को बनाए रखते हैं।

'सुमति' एक उत्कृष्ट कहानी है जिसमें एक उच्छृंखल प्रकृति के

लड़के और उसकी भाभी के निगूढ़ प्रेम का चित्रण किया गया है। सभी यह कहते हैं कि भाभी के अतिशय लाड़-प्यार से राम बिगड़ गया है। घर की एक शंकालु व बूढ़ी दासी उनके प्रेम का गलत अर्थ लगाने और इस प्रकार पति-पत्नी के बीच मन-मुटाव पैदा करने की चेष्टा करती है। राम ने गाँव-भर के लोगों का नाक में दम कर रखा है। भाभी उसकी ओर कड़ा रुख अपना कर उसकी बुद्धि को ठिकाने लगाने का प्रयत्न करती है। यह उसके प्रेम ही को दूसरी तरह से व्यक्त करना है। राम अपने उद्धत आचरण को नहीं छोड़ता जो अन्त में घर में कुछ समय के लिए हलचल-सी पैदा कर देता है। पति उन दोनों को अलग कर देना चाहते हैं जिससे सौतेला भाई राम स्वाधीन हो कर रह सके। इससे उन दोनों पर मानो वज्रपात होता है। उनका स्नेह-तंतु छिन्न-भिन्न कर दिया गया है और जीवन सूना हो गया है। यह अवस्था तीन दिन तक ही रहती है। बूढ़ी नौकरानी जो इसकी जड़ थी नौकरी से हटा दी जाती है और पति-पत्नी में समझौता हो जाता है। राम भविष्य में शिष्टाचार दिखलाने का प्रण करता है। इस प्रकार उसके मस्तिष्क में सुमति का उदय होता है। विदाई की चोट ने उसे सुधार दिया है। वह अपनी 'माँ' को फिर से मिल जाता है। 'माँ' तथा उसके 'बालक' के अद्वितीय सम्बन्ध का दिग्दर्शन कराने के लिए केवल नरायनी के चरित्र का पूर्ण विकास दिखाया गया है। राम के नटखट स्वभाव और उसके अशिष्ट आचरण को ढाँपने के लिए भाभी के निरन्तर प्रयत्नों को अंकित करने के लिए अनेक प्रसंग जोड़े गये हैं। ईर्ष्यालु नौकरानी के चरित्र को कहानी में यथार्थता से चित्रित किया गया है। पति के चरित्र की रूप-रेखा ही प्रस्तुत की गई है। यह वस्तु-विधान के आग्रह के

अनुरूप है। जिस क्षेत्र को शरत् प्रयोग में लाए हैं, वह कहानी के लिए बहुत बड़ा है। पात्रों का पूर्ण विकास करने के उत्साह में लेखक ने स्वर की कलात्मक एकरूपता की उपेक्षा कर दी है जो कहानी की मुख्य विशेषता है। उनके पात्र कहानी की निर्धारित सीमा से बाहर हो कर विकसित होते हैं।

'मंदिर' में एक विधवा के प्रेम करने के अधिकार को महत्त्वपूर्ण समस्या खड़ी की गई है। अपर्णा इस कहानी की प्रधान चरित्र है। लौकिक रीति से उसका विवाह एक ऐसे व्यक्ति के साथ किया गया है जो उसके प्रेम को पा नहीं सका। वह बीमार पड़ जाता है और एक अन्य व्यक्ति के सुख के लिए चल बसता है जो अपर्णा के पिता के गाँव में प्रतिदिन नियमित रूप से मंदिर जाता है। वे एक-दूसरे से प्रेम करने के लिए मिलते हैं; परन्तु वह तो एक विधवा है जिसे प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं। कहानी में घटनाएँ इतनी द्रुत व भावोत्तेजक गति से आगे बढ़ती हैं कि दूसरे व्यक्ति का भी देहान्त हो जाता है और अपर्णा मध्यवर्गीय जगत में अकेली ही रह जाती है। इस विषय का लेखक ने बहुधा प्रयोग किया है, किंतु प्रस्तुत कहानी में इसे कलात्मक ढंग से निभाया नहीं गया। जिस पत्र-पत्रिकागत शैली को इसमें अपनाया गया है वह ऐसे पाठकों को तृप्त करती है जो भावोत्तेजना की ओर अपनी प्रबल प्रवृत्ति को शान्त करने के लिए सदैव उत्कण्ठित रहते हैं। चरित्र-चित्रण अथवा जीवन के किसी एक पहलू को अंकित करने का कोई गम्भीर प्रयास इस कहानी में नहीं मिलता। हाँ, एक लड़की के जीवन में से कुछ प्रसंगों को ले कर उन्हें कलात्मक एकता के साँचे में ढालने के किसी प्रयत्न के बिना जुटाया गया है।

'विलासी' एक ऐसी लड़की की जीवन गाथा है जो समाज के निम्नतम स्तर से सम्बन्ध रखती है। वह एक सपेरे की बेटी है और स्वयं भी वह इस काम में निपुण है। कहानी में इस लड़की के एक महान त्याग को महत्त्व दिया गया है। विलासी उस ग्रामीण बालिका से विवाह कर लेता है जिसने एक बार मृत्यु के चंगुल से उसकी रक्षा की थी। इससे गाँव-भर में तहलका मच जाता है क्योंकि लड़का एक उच्च-जाति का निकल आता है। इस सारी अशान्ति की जड़ लड़के का चाचा है। वह गाँव में सदाचार का ठेकेदार है। कोई बात नहीं यदि वह स्वयं दुराचारी है। ये परस्पर-विरोधी चरित्र कहानी के उद्देश्य को लक्षित करते हैं। लड़की का आदर्श चित्रण कहानी के उद्देश्य को परिपुष्ट करता है। नीरस एवं क्षुद्र बाह्याकार के आवरण में जैसे एक स्निग्ध हृदय का स्पन्दन हो रहा है। लेखक ने अनेक कहानियों में मानव के आन्तरिक महत्त्व पर बराबर बल दिया है और यह मध्यवर्गीय जीवन के मूल्यों पर सीधा आक्रमण है। प्रस्तुत कहानी की डायरी-शैली इस धारणा को पुष्ट करती है कि ऐसा कोई पात्र लेखक के निजी जीवन का ही प्रतिरूप हो सकता है।

'हरिचरण' एक घरेलू नौकर के करुणा तथा निरीह भावनाओं से पूर्ण जीवन का छोटा-सा दृश्य है। एक अनाथ लड़का किसी वकील के घर नौकर है जहाँ वह बड़ी श्रद्धा एवं ईमानदारी के साथ काम करता है। वह परिवार के सदस्यों विशेषतया एक छोटी-सी लड़की के साथ जो उससे बड़ा स्नेह करती है घुलमिल जाता है। एक दिन उसे अपने मालिक से ज़ोर की मार पड़ती है, जिससे बीमार पड़ कर वह मर जाता है। कहानी यहाँ अत्यन्त भावपूर्ण बन जाती है और सीधी

अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगती है। एक गरीब अनाथ लड़के को सद्भावना एवं आन्तरिक महत्ता से युक्त दिखाया गया है। इस चरित्र का आदर्श चित्रण कहानी का मुख्य ध्येय है। 'अभागिन का स्वर्ग' भी एक निर्धन स्त्री के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है। एक बार अभागिन अपने गाँव में एक धनी स्त्री की भीड़-भाड़ के साथ निकल रही अरथी को देखती है। उसका यह दृढ़ विश्वास है कि मृत स्त्री की आत्मा एक हवाई रथ में चढ़ कर स्वर्ग में पहुँच गई है। प्रत्येक मृत व्यक्ति स्वर्ग को चला जाता है जहाँ धनी और निर्धन तथा उच्च और नीच में किसी प्रकार का भेद नहीं है। कालान्तर में उसकी भी मृत्यु हो जाती है, परंतु उसका दाह-संस्कार करने के लिए लकड़ियाँ तक जुट नहीं पातीं। उसके इकलौते बेटे के लिए दुःखद स्थिति पैदा हो जाती है जिसे उसका दाह-संस्कार करने के लिए विवश किया जाता है। परम्परागत विश्वास अथवा मान्यता के अनुसार उसके लिए स्वर्ग के द्वार बंद हैं। गाँव के ज़मींदार का एक गुमाश्ता उसके पुत्र को अपनी माँ का दाह-संस्कार करने के लिए उस वृक्ष को भी काटने की अनुमति नहीं देता जिसे स्वयं उस लड़के की नानी ने उगाया था। यह अन्याय तथा अत्याचार की पराकाष्ठा है। कुछेक कुशल रेखाओं द्वारा शरत् ने धनियों व निर्धनों की दुःखद विषमता को अंकित करके रख दिया है। यह कहानी उस समाज-व्यवस्था की सशक्त आलोचना है जिसमें गरीबों के साथ न्याय नहीं बरता जाता। यह आलोचना और भी प्रभावपूर्ण एवं उग्र बन जाती है क्योंकि लेखक की लेखनी से किसी भी प्रत्यक्ष टीका-टिप्पणी के बिना इसे अल्प मात्रा में प्रस्तुत किया गया है।

'पारस' मध्यवर्गीय जीवन का सजीव चित्र है। इस कहानी में मानवीय सम्बन्धों के स्रोत को कलुषित कर देने वाले सम्पत्ति के बटवारे से उत्पन्न तुच्छ स्पर्धाओं का चित्र खींचा गया है। गुरुचरण को सच बोलने के अपराध में दस हजार रुपये जुर्माना भरना पड़ता है। उसका भतीजा पारस जो संकुचित एवं स्वार्थी मध्यवर्गीय समाज में रहते हुए भी त्याग की भावना को लिए है अपने चाचा का दुःख बाँटता है और उसके साथ ही गाँव से प्रस्थान कर देता है। इस बात को यथार्थ ढंग से दिखाया गया है कि किस प्रकार मरणोन्मुख सामन्तीय समाज-व्यवस्था में सम्पत्ति इस वर्ग के सदस्यों में झगड़े की जड़ बन जाती है और कैसे यह उन लोगों के बीच ईर्ष्या, कलह तथा घृणा पैदा कर सकती है जो इससे लिपटे हुए हैं। 'बाल्य स्मृति' बाल्य-जीवन की छोटी-सी कहानी है। मालिक एक 'मेस' के एक दीन नौकर के दीन-हीन जीवन की याद करता है। थोड़ी-सी घटनाओं को अतीत के मनोहर रंग में रँग दिया गया है। चिमनी के शीशे का टूटना, धन का चोरी होना और अंत में उसका नौकरी से हटा दिया जाना साधारण घटनाएँ हैं जिनमें एक विशिष्ट सौन्दर्य का संचार किया गया है। इन घटनाओं का भावपूर्ण चित्रण कहानी को एक अनोखा रूप प्रदान करता है। एक नौकर के जीवन का एक पहलू भी कहानी का महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है। यह नवीन लोकतंत्रात्मक शक्तियों के प्रभाव का परिणाम है जो साहित्य में अभिव्यक्त होना चाहती हैं; परंतु कहानी के काल्पनिक एवं भावपूर्ण स्वरूप से प्रकट होता है कि उन्हें मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से अपनाया गया है।

इस प्रकार शरच्चन्द्र ने मध्यवर्गीय समाज के महानतम कलाकार

के नाते कहानी में अपने ही वर्ग के जीवन तथा समस्याओं को साकार रूप दिया है। उन्होंने यह भी प्रकट कर दिया है कि कहानी अनेक प्रकार से रची जा सकती है। कुछ ऐसी कहानियाँ मिलती हैं जिनकी कथावस्तु को अनायास ही उपाख्यान का रूप दिया जा सकता है, ऐसी कहानियाँ भी हैं जो उपाख्यानों से अधिक कुछ नहीं। कुछ कहानियों में कथा का विकास झटकों द्वारा होता है, अन्य कहानियों में जीवन की झलक-मात्र ही मिलती है, कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जो जीवन का अंश ही है, ऐसी भी कहानियाँ हैं जो नीरस रिपोर्ताज ही हैं और कुछ ऐसी हैं जिनमें उपन्यास का आभास मिलता है।

कहानी के ये सभी रूप मान्य हैं, सभी कहानी के प्रकार के अंतर्गत हैं। इन सब की एक सामान्य विशेषता है जिसे संतुलन कहा जा सकता है। यह लेखक के व्यक्तित्व की एक सहज अभिव्यक्ति है। प्रत्येक कहानी को इस ललित एवं सहज कसौटी द्वारा परखना है। शरच्चन्द्र ने परवर्त्ती लेखकों का पथ प्रशस्त कर दिया है जो कहानी को मध्यवर्गीय समाज में अभिव्यक्ति के अनन्य माध्यम के रूप में अपनाएँ। जिस तरह एलिज़ाबेथ-युग में नाटक, अठारहवीं शताब्दी में दोहा तथा उन्नीसवीं शताब्दी में उपन्यास अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है, उसी तरह आधुनिक युग में साहित्य के सर्वप्रिय रूप में कहानी की स्थापना लगभग हो चुकी है।

——

चौथा अध्याय

चरित्र-चित्रण

सामान्य

शरच्चन्द्र की सृजनात्मक प्रतिभा चरित्र-चित्रण के रूप में प्रकट होती है। यदि वह नर-नारियों के अनेक अमर चित्रों की सृष्टि न करते तो इतने महान उपन्यासकार न बन पाते। उपन्यास वास्तव में मनुष्यों के जीवन की कहानी है और यदि वे ही पाठक को यथार्थ रूप में न दीख पड़ें तो कहानी उसके मर्म को छू नहीं पाती। शरत् की कहानियाँ पाठक की भावनाओं को छू लेती हैं। यह सच है कि वह सामान्य मनुष्य के स्थान पर विशिष्ट व्यक्तियों की सृष्टि करते हैं, फिर भी वह उन्हें व्यापक रूप दे कर अमर बना देते हैं। उनके चरित्र-चित्रण का क्षेत्र सीमित है, लेकिन उन पर यह आरोप लगाना कि वह अपने घेरे के भीतर ही रहते हैं वैसे ही निस्सार है जैसे किसी चित्रकार को मानव चित्रों के अतिरिक्त पेड़ पौधों के चित्र न अंकित करने के लिए दोषी ठहराना। उनके चरित्र-चित्रण का सीमा-निर्धारण उनके आरम्भिक जीवन की परिस्थितियों के कारण हुआ है। महान लेखकों के साथ प्रायः यही हुआ करता है। जिस प्रकार के जीवन एवं स्वभाव के ढाँचे में लोगों को ढाला जाता है उसी की वे सहज जानकारी रखते हैं। मानव-प्रकृति के सम्बन्ध में परिपक्व ज्ञान सदैव उनके आरम्भिक जीवन के अनुभव पर आधारित होता है। अधिकांश लोग

नवयौवन में ही अत्यधिक सूक्ष्मग्राही हुआ करते हैं। युवावस्था में ही विविध संस्कार अन्तर के उस निगूढ़तम स्थान में अपनी छाप लगा देते हैं जहाँ सृजनात्मक जीवन के बीज निहित रहते हैं। प्रथम संस्कार मौलिक एवं चिर-स्थायी होते हैं। प्रेमचंद जिनका पालन-पोषण देहात में हुआ था, किसानों तथा निम्न मध्यवर्ग के जीवन का चित्रण करते समय अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का सर्वोत्तम परिचय देते हैं। रवीन्द्र के सबसे अधिक स्मरणीय पात्र शिक्षित मध्यवर्ग से लिए गए हैं। बंकिम के चरित्रों की सृष्टि भी उस सामाजिक वातावरण से प्रेरित हैं जिसमें वह स्वयं रहते थे। प्रेमचंद के नायक सदैव उसी वर्ग से सम्बन्धित होते हैं जिसके वह स्वयं एक सदस्य हैं। शरत् इसके अपवाद नहीं हैं। वह बंगाल की सीमा पर स्थित भागलपुर जिले में रहने वाले मध्यवर्गीय माता-पिता की सन्तान थे। युवावस्था में वह संन्यासी का वेश धारण करके एक घुमक्कड़ के रूप में मध्यवर्गीय समाज के सम्पर्क में आये। आरम्भिक अध्याय में उन सामाजिक प्रभावों की ओर संकेत कर ही दिया गया है जिन्होंने उनकी विचार-धारा को रूप दिया और उनके चरित्र-चित्रण के क्षेत्र को निश्चित किया। अत्यन्त भावुक होने के कारण जीवन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया अपनी आयु से बढ़-चढ़ कर थी और जिस प्रकार के जीवन में उनका विकास हुआ उसने उनके मन पर इतनी गहरी छाप लगा दी कि जब उनके भीतर सृजनात्मक शक्ति का उदय हुआ तो उन्होंने अपने जीवन के रूप की कल्पना उसी के अनुरूप की। उनके साहित्य का सबसे सजीव अंश वह है जिसमें बालपन के प्रेम तथा उसकी विफलता, नवयुवती विधवा की यातनाओं और उसके प्रेम व जीवन के दुःखद परिणामों

का चित्रण किया गया है। तरुणी विधवा उनकी रचनाओं की प्रधान पात्र है; वह उनकी कला तथा उनके जीवन की प्रेरणास्रोत हैं। उनके साहित्य का क्षेत्र कुछेक स्थितियों, मनोवृत्तियों और पात्रों तक सीमित है। उन्होंने जीवन के अनेक पक्षों का चित्रण तो नहीं किया, किंतु जिनका किया है उसमें कलम तोड़ दी है। श्रीकान्त, राजलक्ष्मी, सतीश, सावित्री, सुरेश, अचला, किरण, कमल, देवदास और पार्वती उनकी महान चरित्र-सृष्टियाँ हैं। इनके जीवन की वेदना उन्हें व्यथित कर देती है। शरत् केवल उन्हीं पात्रों का विस्तार से चित्रण करते हैं जो परिष्कृत स्वभाव के द्वारा जीवन के सौंदर्य का अनुभव कर सकें। किसी छिछले व तुच्छ व्यक्ति को वह कभी विस्तार से अंकित नहीं करते। उनकी कल्पना उसके पास से गुज़र जाती है। वह किसी पात्र में जीवन का संचार तभी करते हैं यदि वह उनके मर्म को छू ले। भद्दे व्यक्तियों के चित्रण में उन्हें कदाचित् ही सफलता मिली हो। भद्देपन का अर्थ है नीचता और नीच लोग न तो गहराई से सोचते हैं, न ही अपनी स्वार्थ सिद्धि में सहायक मूल्यों के अतिरिक्त किसी और मूल्य की ओर आँख उठा कर देखते हैं। शरत् ने यदि विश्वनाथ, बेनी घोषाल जैसे चरित्रों के चित्रण का प्रयास किया भी है तो उसमें सर्वथा असफल ही हुए हैं। इसी तरह बुद्धि-प्रधान व्यक्तियों के चित्रण में भी उन्हें असफलता ही मिली है। इस तरह के पात्र उनके अन्य दृष्टिकोण से संचालित होते हैं। वर्तमान शताब्दी आत्म-चेतना के विकास का युग थी। शरत् उसके प्रति पूर्णरूप से सजग थे। अतः वह कुछ ऐसे पात्रों को लेते हैं जो उनके विचार में नए युग के प्रतिनिधि हैं। कमल आधुनिक काल की चिन्तक है, किरण नवीनयुग की नास्तिक

है, भारती एक प्रगतिशील विचारों वाली युवती है। उन्हें वास्तविकता प्रदान करने में लेखक ने अत्यन्त ईमानदारी से काम लिया है। उनके विचारों व शंकाओं को हमारे सम्मुख सूक्ष्मता से रखा गया है। ऐसे पात्रों को शब्दों अथवा क्रियाओं द्वारा चित्रित नहीं किया जा सकता। उनके विचारों के विवरण आधुनिक विषयों पर निबन्ध-से जान पड़ते हैं। उनकी बातचीत कालेजों की सभाओं में होने वाले वाद-विवादों के समान है। उदाहरणार्थ, कमल अपनी चकाचौंध के बावजूद भीतर से थोथी है; इसके विपरीत सावित्री और पार्वती सजीव पात्र हैं। राजलक्ष्मी का चरित्र-चित्रण कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है।

किसी पात्र के जीवन में सेवा, त्याग तथा वेदना से शरत् सदैव प्रभावित हो जाते हैं। वह उन व्यक्तियों में मानवीय महत्ता एवं प्रतिष्ठा खोजते हैं जो समाज द्वारा परित्यक्त हैं। विभिन्न सामाजिक वर्गों के सम्बन्ध में उनके शैशव के अनुभवों ने मानव के आन्तरिक महत्त्व को उनके आगे प्रकट कर दिया है। वह सदैव समाज-पीड़ित व्यक्तियों का पक्ष लेते हैं जो उनके मन को मोह लेते हैं। अतएव उनकी रचनाओं में दुःखी मानव-जाति के प्रति असीम दया एवं करुणा की धारा बहती है। वह सर्वश्रेष्ठ भारतीय उपन्यासकार हैं जिनके विचार में शारीरिक पवित्रता और आन्तरिक श्रेष्ठता का पर्यायवाची होना आवश्यक नहीं है। इस सिद्धान्त को वह अपनी नारी-संबंधी धारणा पर साहसपूर्वक लागू करते हैं। लम्पट, वेश्याएँ और शराबी तक अपने जीवन में आन्तरिक पवित्रता के बीज लिए रहते हैं। 'पतित नारी' समाज से भले ही बहिष्कृत हो, फिर भी उसका जीवन शालीनता, शोभा एवं सद्भावना से सम्पन्न हो सकता है। शरत् की मूलभूत मानवीयता तथा मानव के

वास्तविक महत्त्व की पहिचान उन प्रगतिशील शक्तियों का परिणाम है जो शिक्षित मध्यवर्ग द्वारा पुष्ट हुई हैं। यह कदाचित् साहित्य को उनकी महानतम देन है कि उन्होंने मध्यवर्गीय समाज के, जिसके वह स्वयं भी सदस्य थे, सामान्य व्यक्ति की शक्तियों का पुनरुद्घाटन किया है।

पुरुष-पात्र

शरत् के पुरुष-पात्रों को सहज ही नायकों तथा अन्य चरित्रों में विभक्त किया जा सकता है। उनके उपन्यासों और कहानियों का नायक मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधि होता है। वह मध्यवर्गीय समाज के मूल्यों का साकार रूप तथा मरणोन्मुख समाज-व्यवस्था का प्रतिबिम्ब है। साहित्य का नायक सदैव सभ्यता एवं संस्कृति के एक विशेष चरण का प्रतिरूप हुआ करता है। अतः नायक सम्बन्धी धारणा को शेष ऐतिहासिक क्रम तथा सामाजिक घेरे से अलग करना सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ महाकाव्यों में वह मुख्य रूप से एक योद्धा, साहसी तथा कर्मशील पुरुष और समाज का अनिवार्य अंग रहा है। वह दुविधा-रहित तथा दृढ़ निश्चय वाला महान व्यक्ति है जो सदैव संघर्ष एवं संग्राम में रत रहता है। अतः वह एक शक्तिशाली और नवीन समाज को प्रतिबिम्बित करता है। बौद्धकालीन नायक को सामान्यतया एक परम योगी तथा करुणामय व्यक्ति के रूप में दिखाया जाता है जो भारतीय संस्कृति के शान्ति-प्रिय तथा मानववादी युग का प्रतिनिधित्व करता है। प्राचीन साहित्य के नायक का चरित्र इससे भिन्न है। वह मुख्यतः रोमाण्टिक है और महाकाव्य के नायक की अपेक्षा अधिक मानवीय है। कालिदास और भवभूति के नाटकों में उसे मुख्य रूप से

एक प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है जिसके सभी कार्य एक प्रधान भाव—प्रेम—के अधीन रहते हैं। वह सामंतीय सभ्यता के एक स्थिर रूप का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें उच्च वर्ग के लिए प्रेम को मनोरंजन का साधन मानना सम्भव है। इसके अतिरिक्त राजपूत नायक एक पराक्रमी नरेश है जो वीरता के युग का प्रतिनिधि है, क्योंकि वह सामाजिक संघर्ष तथा सामंतीय अव्यवस्था के उस युग से सम्बन्ध रखता है जिसमें वीर भावना का पुनरागमन हुआ।

आधुनिक नायक समाज से संघर्ष में आने वाला व्यक्ति है। वस्तुतः वह एक व्यर्थ व्यक्ति है जिसका अपनी धरती से उन्मूलन हो गया है। वह एक एकाकी जीव है जो अपने सामाजिक वर्ग से प्रायः अलग हो चुका है। शरच्चन्द्र के उपन्यासों का नायक या तो कोई निराश व्यक्ति है जो उस समाज के अनुरूप नहीं ढल पाया जो अहं-भाव को धर्म के रूप में प्रश्रय देता है, या फिर कोई अनुताप-ग्रस्त कुलीन व्यक्ति है जो लोगों के साथ कोई नाता जोड़ना चाहता है जिससे कि अपने को कम एकाकी तथा अकारथ अनुभव कर सके। देवदास, सुरेन, सतीश अकारथ व्यक्तियों की कोटि के अन्तर्गत आते हैं। 'ग्रामीण समाज' का रमेश द्वितीय श्रेणी के नायकों में से है। निराश शिक्षितवर्ग-सम्बन्धी मुख्य विषय किसी व्यक्ति की दुःख-गाथा है जिसे जीवन बँधा हुआ प्रतीत होता है। वह मध्यवर्गीय समाज में अपना व्यक्तित्व खड़ा करने का प्रयत्न करता है, लेकिन अंत में उसके द्वारा पराजित हो जाता है। वह अपने-आप में संकुचित हो जाता है चाहे साथ ही समाज-व्यवस्था का घोर विरोधी भी बना रहता है। वह वर्तमान के प्रति असन्तोष प्रकट करता है जिसका मुख्य कारण यह है कि वह अपनी विफल

आकांक्षा तथा आन्तरिक विध्वंस का प्रतिशोध लेना चाहता है। रमेश उन अनावश्यक व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है जो स्वयं ज़मीदार हो कर भी इतना आर्थिक कारणों से नहीं जितना नैतिक तथा मानवीय कारणों से असामियों के शोषण का अनुमोदन नहीं करता। वह उन सम्पन्न युवकों का प्रतिनिधि है जिन्होंने १९२०-२१ और १९३०-३२ में काँग्रेस द्वारा सञ्चालित आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप श्रमिकों के हितार्थ अपनी सुख-सुविधा का परित्याग कर दिया। यह कुलीन शिक्षित वर्ग की ओर से जनता के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास था। उनके मन में एक विषम संताप की भावना समाई हुई थी, इसलिए उन्होंने भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में क्रान्तिकारी नेताओं, समाज-सुधारकों तथा उदार व्यक्तियों का कार्य किया। रवि बाबू, प्रेमचंद, खांडेकर इत्यादि अनेक भारतीय उपन्यासकारों ने ऐसे व्यक्तियों का चित्रण किया है जिन्होंने श्रेष्ठतर समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए अतीत का आदर्शीकरण किया। सामाजिक घेरे से अलग होने के कारण शरच्चन्द्र के नायक भावुक, लापरवाह तथा निराश व्यक्ति हैं जो एक ह्रासोन्मुख संस्कृति के प्रतिरूप हैं। वे अपनी प्रेयसी को समझने का प्रयत्न नहीं करते, लेकिन जब ऐसा करते हैं तो उसके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर नहीं होते। देवदास पार्वती को पहिचानता है; वह उसके लिए अपने सर्वस्व की बलि देने को प्रस्तुत है। वह इसकी उपेक्षा करता है। एक अज्ञात भय, थोड़ी-सी लापरवाही और तनिक उदासीनता उसके रूखे व्यवहार के कारण हैं। 'बड़ी दीदी' का सुरेन लापरवाही का साकार रूप है। श्रीकान्त अपनी प्रेयसी को पाना चाहता है। वह उससे एक महान त्याग—धार्मिक विश्वासों, सामाजिक

रूढ़ियों, माता-पिता की ममता, उसके जीवन ही के त्याग की आशा करता है। प्रणय के प्रथम तीन चरणों में वह उसके प्रति उदासीन ही बना रहता है। चौथे चरण में आ कर ही वह उससे विवाह करने के लिए राज़ी होता है और एक सामान्य गृहस्थी चलाता है। अब वह एक सर्वथा निराश व्यक्ति के रूप में दीखता है ; उसमें उदासीनता तथा मनन की अद्भुत भावना का उदय होता है। महिम (गृहदाह), सुरेन (बड़ी-दीदी), चंद्रनाथ (चंद्रनाथ), नरेन्द्र (स्वामी), वृन्दावन (पंडित जी), प्रियनाथ (बाह्मन की बेटी), गुणेन्द्र (पथ-निर्देश), सतीश (चरित्रहीन)—सभी मध्यवर्गीय समाज की उपज हैं। वे सामान्यतः अपने व्यक्तिगत जीवन में इतने खोए रहते हैं कि अपने आस-पास के जगत के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन ही रहते हैं। वे सभी उदासीन तथा लापरवाह व्यक्ति हैं जिनका यह स्वभाव किसी आन्तरिक विफलता एवं निराशा के परिणाम-स्वरूप बन गया है। कदाचित् युग का वातावरण ही इसका कारण है। शरत् के नायक अथवा प्रधान पात्र ही इस धातु के बने हुए नहीं हैं, उनके गौण पात्रों में भी ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं। नीलाम्बर दुराचारी जीवन व्यतीत करने वाला व्यर्थ व्यक्ति है; ऐसा होते हुए वह एक उज्ज्वल हृदय लिए है। प्रियनाथ (बाह्मन की बेटी), गिरीश (निष्कृति), विनोद (बैकुण्ठ का दानपत्र), गुरुचरण (परिणीता) सभी लापरवाह व्यक्ति हैं जो जीवन की भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति उदासीन रहते हैं। 'श्रीकान्त' में गौहर वीतराग प्राणी है जो आत्म-त्यागमय जीवन व्यतीत करता है। इसी तरह स्वामी व्रजानंद अकर्मण्य व्यक्ति है जिसे धन के प्रति घोर विरक्ति है। 'लेन-देन' में जीवानन्द समाज से सर्वथा अलग किया गया

है। वह एक निराश व्यक्ति है जो अपने शून्य अन्तर को किसी मूर्त वस्तु से भरने के लिए अपने आचार-विचार में नए नए प्रयोग करता है। उनके विचार में भोग विलास के अतिरिक्त जीवन में और कोई सुख नहीं है। रमेश (ग्रामीण समाज) और विप्रदास (विप्रदास) जो पश्चात्ताप करने वाले कुलीन व्यक्ति हैं आदर्श पात्र हैं, लेकिन उनका आचरण कुछ निर्जीव-सा लगता है। विप्रदास मितभाषी तथा धार्मिक विचारों वाला है और स्नेह का पात्र है। वह परम्परा का अनुयायी है। रमेश नवीन शक्तियों का प्रतीक है। वह समाज की प्राचीन एवं नवीन व्यवस्था में समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। वह लेखक के निर्जीव बने रहने के आदर्श तक नहीं पहुँच पाता। उसने गाँव को जैसा अज्ञान में डूबा पाया था उसे वैसा ही छोड़ कर चल देता है। एक सामान्य नैतिक चेतना तथा आन्तरिक श्रेष्ठता, उदासीनता एवं उदासी की भावना—संक्षेप में यही शरत् के समस्त पुरुष-पात्रों की मुख्य विशेषताएँ हैं। वे लेखक के उस निराशा के पंथ के साकार रूप हैं जो एक मरणोन्मुख संस्कृति का प्रतीक है। शिक्षित वर्ग अपनी धरती से उखड़ गया है। उसने जीवन की परम्परागत व्यवस्था को खो कर मध्यवर्गीय संस्कृति का ताना-बाना फैला लिया है। मकड़ी की तरह वह अपने ही जाल में फँस गया है। आदि मध्यवर्ग के प्रगतिशील समाज-सुधारक तक भोगवाद, अहंवाद तथा विनाशवाद के गर्त में गिर चुके हैं। उनमें से कुछ तो मद्यपान, कुछ अतीत के आदर्शीकरण का सहारा लेते हैं और कुछ फिर एक तरह की अकर्मण्यता, उदासीनता तथा निराशा का रुख अपना लेते हैं। ऐसा होने पर भी ये लोग मानवता और प्रेम में अपनी अडिग आस्था के कारण किसी भी

घोर निराशावाद की ओर प्रवृत्त नहीं होते। इस विश्वास को मध्यवर्गीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप कहा जा सकता है।

स्त्री-पात्र

शरच्चन्द्र ने नारी के विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों का विलक्षण अध्ययन किया है। नारी का चरित्रांकण उनकी कला एवं प्रतिभा का विशिष्ट लक्षण है। इन्होंने लकीर की फकीर और विद्रोही विधवा, सुखो और निराश प्रेमी, परम्परावादी एवं कठोर माँ, रूढ़िग्रस्त व कट्टरपंथी वृद्धा नारी, उदार तथा संकीर्ण-हृदय पत्नी, स्नेहशील बहन और सर्वोपरि अपनी वात्सल्य-भावना की पूर्ति के लिए सर्वस्व त्याग सकने वाली नारी इन सब के अमर चित्र अंकित किए हैं। उनकी प्रायः सभी नायिकाएँ अपने प्रेम-पात्र से माँ का-सा स्नेह करती हैं। उनके प्रेम में उस कोमलता की झलक मिलती है जो सामान्यतः माँ के स्नेह में पाई जाती है। ये नारियाँ समाज के मेल की कड़ियाँ हैं। उनकी सहज रूढ़ि-प्रियता और उदात्त सामाजिक चेतना को समझना कठिन नहीं है। संक्रांतिकाल में सामाजिक सम्बन्धों के छिन्न-भिन्न होने से पुरुष की अपेक्षा नारी के अधिक यातना झेलने की सम्भावना रहती है। शरत् को नारी की विपदाओं की जानकारी है। वह उस नवयुवती विधवा के आहत व घायल हृदय को खोल कर रख सकते हैं जो मध्य-वर्गीय समाज में सब से अधिक दुःखी प्राणी है। दुःखी नारी उनकी करुणा को जगाती तथा सात्विक क्रोध को उभाड़ती है। संसार उसे भले ही 'पतित नारी' कहता रहे, लेकिन वह अपनी आन्तरिक पवित्रता तथा सच्चरित्रता को नहीं खोती। 'चरित्रहीन' में सावित्री, 'श्रीकान्त'

में अन्नदा-दीदी, 'बड़ी-दीदी' में माधवी सामाजिक अन्याय की शिकार हैं, लेकिन उन्हे विशुद्ध नारीत्व के उच्चादर्शों के रूप में दिखाया गया है। 'पथ के दावेदार' में भारती, 'शेष प्रश्न' में कमल, 'विप्रदास' में बन्दना, 'स्वामी' में सौदामिनी नवीन समाज-व्यवस्था की ठेठ उपज हैं। ये सभी शिक्षित एवं संस्कृत हैं और अतीत से जकड़ी हुई नहीं हैं, वरन् समाज के प्राचीन मूल्यों के प्रति ये असंतोष प्रकट करती हैं। अपनी सामाजिक तथा बौद्धिक स्वतंत्रता के होते हुए वे कट्टरपंथी समाज की रूढ़ियों एवं विश्वासों से सर्वथा मुक्त नहीं हैं। भारती एक ईसाई लड़की होने पर भी पुरातन-पंथी समाज की रीति-नीति का परित्याग नहीं कर देती। बन्दना अपनी समस्त शिक्षा एवं जाग्रति के बावजूद अपने को जीवन के परम्परागत साँचे में ढालने को उत्सुक है। कमल रूढ़िगत विश्वासों तथा परम्परागत मूल्यों की भले ही निर्मम आलोचना करती रहे, परन्तु उसका व्यावहारिक जीवन उसके विचारों के विपरीत है। वह उन्मुक्त प्रेम की समर्थक और आधुनिक नारी-समाज की अग्रदूत है, फिर भी वह जीवन के वैष्णव मूल्यों को स्वीकार करती है। राजलक्ष्मी तो उन धार्मिक विधि-निषेधों का भी पालन करती रहती है जिन्हें रूढ़िग्रस्त समाज में विधवाओं को मानना पड़ता है।

नारी की सहज रूढ़िप्रिय प्रकृति के अतिरिक्त उसकी वात्सल्य-भावना की तृप्ति की उत्कट अभिलाषा उसे विशुद्ध नारीत्व प्रदान करती है। वह मुख्य रूप में माँ है। उसकी मातृत्व की सहज वृत्ति तथा सामाजिक रूढ़ियों के बीच द्वन्द्व चलता है। नवयुवती विधवा की अतृप्त कामनाएँ शरत् के उपन्यासों व कहानियों का मुख्य विषय बनती हैं। उसका माँ का-सा प्रेम उसके दमित वासनात्मक प्रेम का दूसरा रूप बन जाता है।

मातृत्व की भावना और रूढ़िगत कर्तव्य का संघर्ष उसके जीवन पर छाया रहता है। वह अपना माँ का-सा स्नेह पुरुष पर बरसा कर संतोष कर लेती हैं। राजलक्ष्मी एक विधवा है, अतः उसकी मातृत्व की भावना अतृप्त ही रहती है। षोड़शी, सावित्री, और माधवी भी इसी धातु की बनी हुई हैं। षोड़शी ने अपने को मंदिर के प्रति समर्पित कर रखा है। वह अनुभव करती है कि पुजारिन का जीवन प्रवंचना-मात्र है। राजलक्ष्मी और सावित्री अपने प्रेम-पात्रों की सेवा-सुश्रूषा करने के लिए उनके निकट रहीं। माधवी इससे वंचित रही। सुरेन उसके आँचल में एक बालक की तरह चल बसा। माधवी का जीवन निस्सीम पीड़ा एवं निराशा से परिपूर्ण था। पार्वती में वात्सल्य-भावना की अपेक्षा वैवाहिक इच्छा अधिक थी। वह विधवा नहीं थी। उसे बच्चों से कोई मोह नहीं था। वह किशोरावस्था के प्राथमिक प्रेम का प्रतिनिधित्व करती है। राजलक्ष्मी के प्रेम में प्रौढ़ता है। नवयुवती रमणी का चपल प्रेम माँ के स्थिर एवं संतुलित स्नेह में परिणत हो गया है। पार्वती, सौदामिनी और अचला ऐसी आत्मरत युवतियाँ हैं जो अपने दिए हुए से अधिक लेने के लिए लालायित रहती हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके जीवन में संयम ही नहीं है। वे अपने प्रेम-पात्र को पाने के लिए अपने सर्वस्व का त्याग करने को प्रस्तुत रहती हैं, पर दूसरे पक्ष से प्रेम का उचित प्रत्युत्तर पा कर ही ऐसा करती हैं। राजलक्ष्मी और सावित्री एक महान त्याग करने की क्षमता रखती हैं। माँ बालक की ओर से किसी प्रत्युत्तर की आशा नहीं रखती। श्रीकान्त यह अनुभव करता है कि राजलक्ष्मी उसकी प्रेयसी ही नहीं माँ भी है। राजलक्ष्मी के मन में एक तीव्र वात्सल्य-भावना समाई

रहती है, लेकिन वह उसे पूर्ण नहीं कर पातीं। उसका वैधव्य उसके मार्ग में बाधक है। जब उसे मातृत्व की अदम्य इच्छा का दमन करना पड़ता है तो उसकी भावनाएँ अत्यन्त मार्मिक हो उठती हैं। इस दिशा में माधवी का जीवन और भी दुःखमय है। प्रेम और कर्त्तव्य के बीच होने वाला द्वन्द्व उसकी वेदना तथा निराशा का मूलाधार है। उसकी भूल घटना-मात्र ही है। भाग्य की छाप अमिट है। सुरेन ने उससे मिलने की कभी चेष्टा नहीं की। प्रलोभन का निवारण उसके जीवन का प्रमुख प्रयत्न बन गया। उन्होंने एक दूसरे को दूर कर दिया, पर क्यों, यह वे नहीं जानते थे। एक बार वह अपने वैधव्य को भूल गई और उसने अपने को बह जाने दिया। ऐसा होने पर भी उसकी सुकुमार इच्छाएँ तथा मधुर कामनाएँ उन बाह्य शक्तियों द्वारा कुचल डाली गईं जो उसके वश के बाहर थीं। माधवी का जीवन उस अतृप्त प्रेम की कहानी है जो प्रधान स्त्री-पात्रों के जीवन में व्याप्त है। प्रेम की वेदना उन्हें पावन बना देती है; निःस्वार्थ प्रेम के उच्चतम आदर्श को पाने के लिए किया गया त्याग उनके जीवन को उदात्त बना देता है। इसी आदर्शवादी भावना से प्रेरित हो कर वे अपने चहुँ ओर सौंदर्य एवं शालीनता बिखेरती हैं। यही शोभा एवं शालीनता शरत् के उपन्यासों तथा कहानियों को एक मधुर रस व सुरभि प्रदान करती है। ऐसी पवित्रता, प्रेम, सेवा तथा त्याग से पूर्ण नारियों के चरित्र के आदर्शीकरण के उत्साह में वह उस रूढ़िग्रस्त माँ को चित्रित करना नहीं भूल जाते जो घर की चार-दीवारी के भीतर शासन करती है। सिद्धेश्वरी, विश्वेश्वरी, हेमांगिनी और नरायनी सामान्य रूढ़िग्रस्त माताएँ हैं जो स्नेहशील होने के साथ-साथ कठोर भी हैं। स्नेह से परिपूर्ण होने पर भी वे अपना रोब

जमाए रखना चाहती हैं । दूसरों पर शासन करने की इच्छा उनमें अत्यन्त प्रबल है । उदार-हृदय माँ उस संकीर्ण-हृदय अथवा कट्टरपंथी तथा धूर्त बूढ़ी माँ के सर्वथा विपरीत है जिसका जीवन घृणित कार्यों से पूर्ण रहता है । वह अपने विफल मनोरथ का बदला दूसरों का सुख छीन कर लेना चाहती है। वह जर्जर रूढ़ियों की भी शिकार है। परम्परा तथा पुरातन आस्था के नाम पर वह अपने आस-पास के लोगों पर अधिकार जमाने की चेष्टा करती है। 'बाह्मन की बेटी' में रासमणि उस धूर्त बुढ़िया की प्रतिमूर्ति है जिसे उनकी रचनाओं में बहुधा चित्रित नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त बहिन का आदर्श चरित्र और भाई के प्रति उसका निस्सीम स्नेह किसी भी भारतीय उपन्यासकार, विशेषतया शरत् की पैनी दृष्टि से बच नहीं सकता जो प्रेम की अनेक उलझनों को भाई-बहिन के सम्बन्ध द्वारा सुलझा देते हैं। बहिन एक वधू की तन्मयता से अपने भाई से स्नेह करती रहती है, परंतु भाई के साथ उसके गूढ़ एवं स्थिर सम्बन्ध में वासना का कहीं लेश भी नहीं मिलता ।

बालक-पात्र

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बाल्य-जीवन की कामनाओं का सूक्ष्म अध्ययन और विशद चित्रण किया है। वह बालक की मानसिक गतिविधि का सहानुभूतिपूर्वक निरीक्षण करते हैं। उनकी अनेक कविताएँ उसकी भोली अभिलाषाओं तथा काव्यात्मक आकांक्षाओं को मुखरित करती हैं। वह जीवन की कठोर वास्तविकताओं से दूर रहने के लिए एक मनोरम स्वप्नलोक की सृष्टि कर लेता है। शरच्चन्द्र ने भी बालक की आशा-

अभिलाषाओं को वाणी दी है। वह उसके अन्तर में पैठ कर उसके निगूढ़तम भावों को अभिव्यक्त करते हैं। बच्चा अपनी ही दुनियाँ में इतना तन्मय रहता है कि अपने आस-पास के जगत की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। शरत् सदैव अन्तर्मुखी बालक को ही अपनी कृतियों में लाते हैं। उनके बालक-पात्र प्रायः माने हुए दार्शनिकों की तरह विचारशील हैं। वे स्वभाव से मननशील हैं, परन्तु उनके मनन का विषय विशिष्ट बालक तथा उसके सामाजिक वातावरण पर निर्भर रहता है। परेश और काशीनाथ को एकान्त में रखा गया था अतः वे बहुत कुछ भोले व सरल स्वभाव वाले बने रहे। बाल्यावस्था में श्रीकान्त को वीर पुरुषों तथा साहसिक कार्यों से अतिशय अनुराग है। एक स्वतन्त्रता एवं जीवट की भावना उसके मन पर छाई रहती है। इन्द्रनाथ जो किशोरावस्था को प्राप्त कर चुका है उसे प्रभावित करता है और चुम्बक की भाँति अपनी ओर खींच लेता है। उसके आचरण में प्रौढ़ता का आभास तक नहीं मिलता। वह अपनी सरलता तथा नटखटपन को लिए बच्चों का-सा व्यवहार करता है और अपने सहज एवं स्वच्छन्द आचरण से श्रीकान्त को मोह लेता है। उसके साहसी एवं उन्मुक्त स्वभाव में एक अद्भुत आकर्षण-शक्ति है। उसके जीवन में एक विस्मय तथा रहस्य की भावना व्याप्त रहती है। वह एक साहसी लड़का है जो कठिनाइयों से जूझ सकता है। दूसरों के लिए जीवन काँटों की बाड़ी है, लेकिन उसके लिए पुष्पों की क्यारी है। श्रीकान्त उसकी तुलना में भीरु ठहरता है। इन्द्रनाथ की स्वच्छन्दता तथा निर्भीकता की वृत्ति ही श्रीकान्त के मन को आतंकित और वशीभूत करती है। वह जीवन में सदैव साहस-शील रहा है। सांसारिक लाभ-हानि के प्रति उसकी उदासीनता उसके

मित्र को चकित कर देता है। खतरे का सामना करने में वह एक निगूढ़ आनन्द का अनुभव करता है। जो बालक अँधेरे से नहीं डरता उसका मन उतना ही स्वस्थ होता है जितना उस व्यक्ति का जिसे मृत्यु का भय नहीं है। इन्द्रनाथ में किसी भी तरह के भय जैसे भूत-प्रेतों के भय की छाया तक नहीं मिलती। चाहे उसने भूत-प्रेतों के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ सुन रखी हैं, फिर भी अनुभव ने उसे जता दिया है कि ऐसे पदार्थों का अस्तित्व नहीं है। उसे अपनी नौका को श्मशान के पास ले जाने में भी भय नहीं लगता। फुटबाल मैच में वह अपने से अधिक दूसरों को बचाता फिरता है। उसका मन ही निर्भीक नहीं, चरित्र भी उसका उज्ज्वल है। भाग्यवादी होने के नाते उसे विश्वास है कि मानव का मरण निश्चित है। यह ज्ञान उसने धर्म-ग्रन्थों से नहीं, जीवन से संचित किया है। इससे उसमें किसी तरह के अहंकार का परिचय नहीं मिलता, वरन् उसकी सहज निर्भीकता प्रकट होती है। भगवान का नाम उसे जीवन से पलायन का अवसर नहीं देता, बल्कि इससे तो उसे जीवन के झंझावातों का सामना करने का अधिकतर बल मिलता है। वह किसी स्वार्थवश नहीं, दूसरों की सहायता करने के अभिप्राय से विपत्ति मोल ले लेता है। वह स्वभाव से कोमल, अशान्त तथा उदार है। दूसरों को संकट से मुक्त करने की वृत्ति उसमें इतनी प्रबल है कि यह उसका स्वभाव ही बन गया है।

देवदास, काशीनाथ और परेश भिन्न धातु के बने हुए हैं। देवदास उन बालकों का प्रतीक है जिनका मन अपनी पाठ्य पुस्तकों में नहीं रमता। काशीनाथ और परेश शरारती बालक हैं जो गाँव-भर के लोगों को परेशान करने में होशियार हैं। वे अपने अशिष्ट आचरण के कारण

घुड़कियाँ भी खाते हैं, लेकिन फिर भी ऊधम मचाने से कभी परे नहीं हटते। काशीनाथ ने अपने पिता से उत्साही स्वभाव ग्रहण किया है जो परम धार्मिक व्यक्ति था। यह धार्मिक बपौती उस बच्चे के मन को एक गम्भीर तथा मननशील साँचे में ढाल देती है। शरत् के सभी बालक-पात्रों के जीवन में यह विशेषता प्रकट होती है। अन्तर्मुखी बालक उस मध्यवर्गीय समाज-व्यवस्था का प्रतिरूप है जिसमें व्यक्ति अपने भौतिक घेरे के प्रति उदासीन हो जाता है और अनजान में ही उससे अलग हो जाता है। अतः सभी बालकों का अत्यन्त भावुक हो जाना निश्चित है, परंतु अतिशय अंतर्मुखी प्रवृत्ति भी मन का अस्वस्थ विकास है और यह उस ह्रासोन्मुख संस्कृति का लक्षण है जिसका एक व्यापक चित्र लेखक ने खींचा है। ऐसा उन्होंने नर-नारियों के चरित्र-चित्रण के रूप में ही नहीं, अत्यधिक अंतर्मुखी एवं मननशील बालकों के चित्रण द्वारा भी किया है।

पाँचवाँ अध्याय

टेकनीक

संक्रांतिकाल में बाह्य-जीवन के चित्रण का अभाव होता है और सामग्री के चयन की समस्या जटिलतर हो जाती है। ऐसे युग के कथा-साहित्य की शैली को परखना एक रोचक कार्य है। कथा-साहित्य की धारा व्यक्ति-परक मनोदशाओं के गूढ़ चित्रण की ओर—सामान्य के स्थान पर विशेष की ओर उन्मुख होती है। इससे इस परम्परागत मत का विरोध नहीं होता कि उपन्यास विशेष के माध्यम से सामान्य सत्य को प्रस्तुत नहीं कर पाता। इसके विपरीत श्रेष्ठतम उपन्यास वे हैं जो सभी बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही उस संस्कृति को यथार्थरूप में प्रतिबिम्बित करते हैं जिसकी वे उपज हैं। इस प्रकार उपन्यास की शैली अन्त में उस अनुभव व दृष्टिकोण के अनुरूप ढाल दी जाती है जिसे लेखक घटनाओं तथा पात्रों के परस्पर सहयोग द्वारा प्रतिपादित करना चाहता है। अतः उपन्यास का ध्येय वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना है। साहित्य का एक नवीन रूप होने के नाते इसने अपने विषय के उपयुक्त अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। विभिन्न लेखकों ने विभिन्न प्रकार से इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है। उदाहरणार्थ, प्राचीन काल में डेनियल डैफो ने अपनी कहानी की रचना आत्म-कथा के रूप में और रिचर्डसन ने पत्र-शैली के रूप में की। हेनरी फील्डिंग जिन्होंने अपना साहित्यिक जीवन नाटककार के रूप में

आरम्भ किया था, सहायता के लिए नाटक की ओर मुड़े। इन सभी रूपों में प्रधानता उस व्यक्ति के अध्ययन की होती थी जो सामन्तीय समाज-व्यवस्था के अवसान के परिणाम-स्वरूप अपने सामाजिक वर्ग से अलग हो गया था। मानव उन नवीन सृजनात्मक शक्तियों की उपज था जिनका सोलहवीं शताब्दी में विकास हो गया था। उदाहरणार्थ, रोबिन्सन क्रूसो ने अतीत को परे फेंक कर अपना नया इतिहास बनाने में अपने को लगाया। वह नया मानव था जो अपनी शत्रु—प्रकृति पर विजय पाने को उतावला था। वह मानव-जीवन के उस नवीन युग की देहली पर खड़ा था जब विश्व का पूर्ण रूपान्तर होने वाला था और उसने प्राचीन कवियों के स्वप्नों को साकार करना था। यह जान लेने पर उस आत्म-कथात्मक और पत्र-शैली को दिए गए महत्व को समझना कठिन नहीं रह जाता जिन्हें मध्यवर्गीय जीवन के नए अनुभवों को कथा-साहित्य में मुखरित करने के लिए अपनाया गया। आधुनिक काल में लेखक मानव-चेतना के विकसित ज्ञान के फल-स्वरूप साहित्य के परम्परागत साधनों के प्रति असंतुष्ट हो गए हैं। उन्होंने इस बात का अनुभव किया है कि मानव का एक मनोवैज्ञानिक चित्र न तो उसके सम्बन्ध में किसी शाब्दिक वर्णन के रूप में और न ही अपने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

शरच्चन्द्र जो अपनी उदात्त सामाजिक चेतना के फल-स्वरूप प्रचारवादी परम्परा के अनुयायी हैं, उपन्यास-रचना की प्राचीन एवं नवीन शैलियों में समन्वय लाने का प्रयास करते हैं। वह एक यथार्थवादी लेखक हैं जिनका ध्येय साधारण लोगों के साधारण क्रिया-कलापों

को उनके मौलिक आचरण के सूक्ष्म निरीक्षण तथा चित्रण द्वारा समेटना है। उनका यथार्थवाद विवरण—जीवन के छोटे-छोटे तथा महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के सूक्ष्म वर्णन—की सहज प्रवृत्ति पर टिका हुआ है। वह पात्रों, दृश्यों, घटनाओं तथा क्रियाओं के प्रतीकात्मक पक्ष को महत्त्व देते हैं। चूँकि वह एक विशिष्ट विचार-पद्धति के पोषक हैं और एक उदार मानववादी की तरह उपन्यास को अपने सामाजिक उद्देश्य व सामाजिक समालोचना की अभिव्यक्ति का साधन बनाते हैं, अतः अपने ध्येय की पूर्ति के लिए परम्परागत शैली का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः वह एक कथावाचक हैं जिन्हें कहानी कहानी के रूप में ही भाती है। उसमें आरंभ तथा अन्त होना चाहिए, संघर्ष का प्राचुर्य होना चाहिए और सर्वोपरि उसे पाठकों की रुचि को जगाने के लिए पर्याप्त रूप में असाधारण होना चाहिए। ऐसा इसलिए है कि उन्होंने बंकिमचंद्र और पश्चिम के कई परम्परागत उपन्यासकारों की रचनाओं द्वारा अपनी भूख मिटाई है। उदाहरणार्थ, बंकिम पाठकों की रुचि को जगाने तथा कौतूहल को उभाड़ने के लिए एक भावोत्तेजक शैली का प्रयोग करते हैं। शरत् जिन्होंने उपन्यास की शैली को उनसे ग्रहण किया है, उपन्यास को उसी रूप में नहीं रहने देते जिस रूप में वह उसे पाते हैं। वह चेतना की उन अवस्थाओं को सामने ला कर जो मनुष्य के मन का उद्घाटन करने और उसके जीवन की व्याख्या करने में बड़ा महत्त्व रखती हैं; उपन्यास की शैली को सुधारते हैं। वह उन गूढ़तर तत्त्वों एवं शक्तियों पर अपनी दृष्टि जमाते हैं जो मानव के बाह्य आचरण के भीतर निहित रहती हैं। समकालीन जीवन को अपनी नैतिक तथा सामाजिक विवेचना एवं निर्णय की तुला पर तोलने के उद्देश्य से वह परिष्कृत शैली को अपनाते हैं। एक

दक्षिणपंथी यथार्थवादी के नाते वह बाह्य-परक यथार्थवाद के उद्देश्यों से अलग हो कर मानव-स्वभाव को अपने ही सामाजिक वर्ग के नैतिक मूल्यों के अनुरूप परखते हैं। चूँकि उनके साहित्य का केन्द्रीय विषय सामाजिक है, अतः वह उन भावुक यथार्थवादियों में से हैं जो साहित्य में आदर्शवादी प्रतिक्रिया को ऐसी भावना से मुखरित करते हैं जो उनकी रचनाओं में जीवन का संचार करती है। उनके यथार्थ के भीतर उन घातक सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न एक तीव्र वेदना व्याप्त है जो तरुण विधवाओं तथा अन्य व्यक्तियों के जीवन को कुचल डालती हैं। यही वेदना उनके उपन्यासों को दुःखी मानव जाति के प्रति विशुद्ध प्रेम के संदेश में परिणत कर देती है और अन्त में उनकी शैली को ढालती है। शरत् मानव-मन के भीतरी व्यापारों का विश्लेषण करते हैं। उनके मतानुसार एक महान लेखक के लिए यह अनिवार्य है कि वह सामाजिक वातावरण के प्रति मन की प्रतिक्रियाओं का उद्घाटन करे। उनके विचार में बाह्य वर्णन उपन्यास को महान नहीं बना सकते।

एक सरल कहानीकार के नाते शरत् कथानक की उलझनों में नहीं पड़ते। वह पेचीदा रूप तथा विस्तृत आकार का परिहार करते हैं जो चरित्र-चित्रण और जीवन की व्याख्या को दुर्बोध बना देते हैं। उनके कथानक प्रायः सरल होते हैं और वह पुराने विषयों की पुनरावृत्ति करने से नहीं घबराते। वह एक सिद्ध कथा-वाचक हैं। उनके विवरणों का सहज प्रवाह पाठक को वस्तु-विधान की समस्त त्रुटियों और चरित्र-चित्रण के दोषों को भुलाए देता है। उनकी कहानियाँ धारा की तरह प्रवाहित होती हैं और पाठक भी तीव्र जिज्ञासा को लिए उनके साथ ही साथ बह चलता है। उनकी शैली अपनी ही है। कहा जाता है कि शरत्

समूचे कथानक की पहले से कल्पना नहीं करते थे। वह मुख्य विषय को एक सामान्य रूप में निश्चित कर लेते और कुछेक प्रमुख पात्रों को ले कर उन्हें वह कार्य सौंप देते जो वह उनसे कराना चाहते। वह कहानी को चाहे कहीं से आरंभ कर देते। कभी-कभी तो वह पहले कहानी का उपसंहार लिखने बैठ जाते और बाद में उसका उपसंहार कल्पना से जोड़ लेते। 'चरित्रहीन' को इस विशिष्ट ढंग से रचा गया माना जाता है।

इस प्रकार विषय का नाटकीय वर्णन शरत् की शैली की विशेषता है। वह कहानी की इस प्रकार रचना नहीं करते कि पात्र उसमें से निकल आए, प्रत्युत पात्र को कहानी के भीतर रख देते हैं। कुछेक स्थलों को छोड़ कर जहाँ वह पात्र के साथ एकरूप हो जाते हैं, वह अपने को यथासम्भव पृष्ठभूमि में ही रखते हैं। किसी भी तरह वह प्रत्यक्ष रूप में पाठक की सहानुभूति को कुशलता से प्राप्त करते और कोई शिक्षा नहीं देते। कथानक सरल हैं और कहानियाँ पूर्व-परिस्थितियों की व्याख्या की वस्तुतः किसी भी आवश्यकता के बिना आगे बढ़ती हैं। कथा का लक्ष्य चाहे कुछ भी हो, वह उसे पाठक पर छोड़ देना चाहते हैं जो उसे कहानी में से ढूँढ़ सकता है। लक्षणा की शैली अभिधा की शैली से सदैव सशक्त होती है। शरत् को उस असाधारण प्रतिभा पर अधिकार है जिसे महान रूसी कथा-साहित्यकारों ने चरम सीमा पर पहुँचाया है। अपने आरम्भिक विशेषतया लघुतर उपन्यासों में शरत् ने एक महान कलाकार की प्रतिभा का परिचय दिया है। 'देवदास' 'बड़ी-दीदी', 'गृहदाह' और 'दत्ता' सुगठित उपन्यास हैं जिनका रूप एवं आकार निर्दोष है। उनके बाद के उपन्यासों विशेषतः प्रबल उपन्यास-रचनाओं का ढाँचा शिथिल एवं बेडौल है, क्योंकि शरत् उन नए विचारों

के प्रवाह में बह जाते हैं जिन्हें वह उनमें समाविष्ट करना चाहते हैं। 'पथ के दावेदार' और 'शेष प्रश्न' उनके असफल उपन्यासों में से हैं जिनसे उनकी वस्तु-विधान-सम्बन्धी न्यूनताएँ प्रकट होती हैं। ऐसा इस लिए है कि इन उपन्यासों में वह अपने क्षेत्र से बाहर रह कर लिखते हैं। ये कृतियाँ वास्तव में सृजनात्मक नहीं हैं। शरत् बुद्धि-प्रधान व्यक्तियों के चरित्रांकन में सफल नहीं हुए। यह जान लेना कठिन नहीं कि उन्होंने ऐसे पात्रों की अवतारणा क्यों की। वह उन सभी सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का अन्तिम समाधान प्रस्तुत करना चाहते थे जो उन्होंने अपने आरम्भिक उपन्यासों में खड़ी की थीं। जब उन्होंने मध्यवर्गीय समाज की मूलभूत समस्याओं को प्रस्तुत करने के स्थान पर उन्हें सुलझाने का प्रयास किया तो वह उस कार्य को निभा न सके। शरत् एक अप्रौढ़ चिन्तक थे। उनकी मध्यवर्गीय समाज की आलोचना श्रमिक वर्ग के क्रांतिकारी मूल्यों से प्रेरित नहीं होती थी, वरन् उन्हें अपने ही सामाजिक वर्ग के उदार एवं मानववादी मूल्यों से प्रेरणा मिलती थी। जिन पात्रों की वह सृष्टि करना चाहते थे उन्हें सँभाल न सके और इसका परिणाम हुआ अव्यवस्था और असम्बद्धता। यह अनिवार्य नहीं है कि एक महान उपन्यास सदैव सुगठित ही हो जिसमें कोई एक ही विषय एक नाटकीय घटना-क्रम में समाविष्ट हो कर अबाध गति से अपने निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ता जाए। 'चरित्रहीन' एक उत्कृष्ट उपन्यास का अनोखा उदाहरण है जो अपने शिथिल ढाँचे के बावजूद एक प्रबल नाटकीय प्रभाव लिए हुए है। शरच्चन्द्र पात्रों की आन्तरिक अवस्थाओं को अंकित करने के उद्देश्य से उपन्यास में नाटकीय आदर्श को अपनाते हैं। पात्रों की मनोदशाओं को बिना किसी टिप्पणी अथवा

व्याख्या के चित्रित करने के लिए नाटकीय शैली अधिक उपयुक्त होती है। थोड़ी-बहुत व्याख्या किसी भी कहानी के लिए अनिवार्य होती है। किसी पात्र का कुछ वर्णन आवश्यक होता है। शरत् कथोपकथन व वार्तालाप के साधन द्वारा व्याख्या के अंश को न्यूनतम बनाने का बराबर प्रयास करते हैं।

संवाद-कला की दृष्टि से शरत् भारतीय उपन्यास-लेखकों में सर्व-श्रेष्ठ ठहरते हैं। वह नाटकीय संवाद-रचना में सिद्धहस्त हैं। उनकी सभी रचनाओं की मर्मस्पर्शिता का कारण उनके भीतर समाविष्ट संवाद की कला है। 'देवदास' के व्यापक प्रभाव का मुख्य कारण वे प्रभावपूर्ण स्थल हैं जिन पर नायक और नायिका अपनी तीखी तथा व्यंगात्मक उक्तियों द्वारा छाए रहते हैं। सतीश-सावित्री, किरण-उपेन्द्र, सतीश-किरण, किरण-दिवाकर, अजित-कमल, डाक्टर-भारती के संवाद अपनी व्यंगात्मकता और नाटकीय विशेषता के लिए स्मरणीय हैं। सुरेश और अचला का वास्तविक परिचय मुख्यतः उनकी बातों से ही मिलता है। कमल और भारती बातचीत में चमकती हैं। निर्जीव धर्म, जर्जर परम्पराओं और व्यर्थ सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उनके विध्वंसात्मक कथन पाठक के मन में गूँजते रहते हैं। श्रीकान्त और राजलक्ष्मी के वार्त्तालाप एक भिन्न आधार पर टिके हुए हैं। उनसे शालीनता, शोभा तथा माधुर्य टपकता है। उनकी बातचीत में यदा-कदा व्यंग्य का भी आभास मिलता है, लेकिन तीखापन कहीं नहीं मिलता। उपन्यासों की बूढ़ी स्त्रियाँ ऐसे ताने कसती हैं जो अत्यन्त मर्मभेदी व तीखे होते हैं। लेखक मुख्यतः परिसंवाद के माध्यम से ही कथानक को आगे बढ़ाता, पात्रों को प्रकट करता तथा उनकी मनोदशाओं को प्रकाशित करता है।

उसे भग्न-हृदय प्रेमियों, दुःखी नारियों, प्रवंचित पुरुषों, धूर्त वृद्धाओं, संकीर्ण-हृदय व ईर्ष्यालु पत्नियों, स्नेहशील और कठोर माताओं, स्नेहमयी बहनों, बूढ़े व लोभी माता-पिता, विद्रोही नारियों, आवारों तथा घुमक्कड़ों, समरस एवं सौम्य चरित्रों, फकीरों-साधुओं, रूढ़िग्रस्त व निर्जीव लोगों, दुराचारी शराबियों और निराश व्यक्तियों की भाषा पर अधिकार है। उनके उपन्यासों में संघर्षपूर्ण स्थितियों, प्रभावपूर्ण दृश्यों, नाटकीय प्रसंगों तथा रहस्यमय क्षणों का प्राचुर्य है और इन सब को विवरण अथवा वर्णन द्वारा इतना नहीं जितना संवाद के माध्यम से अंकित किया गया है जो अत्यन्त संयत व संक्षिप्त हैं और कहीं-कहीं सूत्र-रूप में भी मिलते हैं। इनके द्वारा पात्रों के जीवन के संकट के पलों का पर्याप्त परिचय मिलता है।

शरत् चरित्र-चित्रण को कथानक से सदैव अधिक महत्त्व देते हैं। वह सामान्यतः एक प्रधान कथानक को चुनते हैं। 'गृहदाह', 'दत्ता', 'पण्डितजी', 'बैकुण्ठ का दानपत्र'—इन उपन्यासों से शरत् की वस्तु-विधान की कला लक्षित होती है। इनकी रचना जीवन-कथाओं के रूप में की गई है। उदाहरणार्थ 'दत्ता' पिता-पितामह के जीवन से आरम्भ होता है। गौण पात्र प्रधान विषय के अनुरूप चलते हैं और अपना काम कर चुकने पर अदृश्य हो जाते हैं। 'गृहदाह' और 'दत्ता' का ढाँचा असाधारण रूप से संतुलित एवं सुव्यवस्थित है। ये एक ही दिशा में बढ़ने वाले उपन्यास कहे जा सकते हैं जिनमें पाठक का ध्यान प्रधान पात्रों पर पूरी तरह केन्द्रित रहता है। इनका क्षेत्र सीमित है और इनमें चित्रित जीवन के रूप का गहरा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि 'गृहदाह' के कथानक में बहुत से नाटकीय मोड़ हैं, फिर भी वह सस्ते रोमाञ्चकारी

नाटक के रूप में गिरने नहीं पाया। यहाँ तक कि अचला और सुरेश के भाग जाने के प्रसंग को भी कलात्मक ढंग से गढ़ा गया है और नायिका के चरित्र को निर्दोष सिद्ध करने के लिए उसे एक आकस्मिक घटना में परिणत कर दिया गया है। सुनिर्मित उपन्यासों की संख्या अधिक नहीं है, क्योंकि वे जीवन के दृष्टिकोण को संकुचित एवं सीमित बना देते हैं। शरत् ने अवश्य ही यह अनुभव किया होगा कि एक ही मुख्य कथानक अथवा एक दिशा में बढ़ने वाला उपन्यास जीवन की सम्पन्नता, विविधता तथा गहराई को क्षीण बना डालता है। इसीसे द्वितीय श्रेणी के उपन्यास इतने सुगठित नहीं हैं। 'चरित्रहीन' में दो प्रसंग साथ-साथ चलते हैं जो परस्पर जुड़े हुए नहीं हैं। सावित्री और किरण एक-दूसरे से दूर ही रहती हैं। उपेन्द्र दोनों कथाओं को मिलानेवाली कड़ी है। उपन्यास के प्रथम भाग में किरण उसकी ओर आकृष्ट होती है और द्वितीय में उससे दूर हट जाती है। उपन्यास में एक नाटकीय मोड़ लाने के लिए सावित्री उपेन्द्र के निकट आ जाती है। मृत्यु-शय्या पर उपेन्द्र सभी पात्रों को अपने पास एकत्र कर लेता है और लेखक कहानी का उपसंहार कर देता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरोजिनी का प्रसंग गढ़ा गया है, अन्यथा कथा के समस्त बिखरे हुए तंतुओं को समेटना सम्भव न होता। अन्त में कहानी को समेटने की प्रक्रिया एक सामान्य साधन है जिसे लेखक यह जताने के लिए अपनाता है कि अब अन्तिम पटाक्षेप हो चुका है। पाठक को उत्कट जिज्ञासा की स्थिति में ही न रहने दिया जाए, प्रत्युत उसके कौतूहल की पूर्णतः निवृत्ति होनी चाहिए। इस लक्ष्य की सिद्धि में 'शेष प्रश्न', 'पथ के दावेदार' और कई कहानियों का भी उपसंहार संतोषप्रद नहीं बन पड़ा। 'लेन-देन'

का कथानक भिन्न प्रकार का है। कहानी की पराकाष्ठा प्रथम अध्याय से आरम्भ होती है। नायक-नायिका के संघर्ष का कथा के विकास में पूर्ण चित्रण एवं समाधान किया गया है। मुख्य कथा जीवानंद-षोड़शी से सम्बन्धित है और गौण कथा का सम्बन्ध निर्मल-हेमवती से है। गौण कथा की उद्भावना मुख्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई है। ज्योंही जीवानन्द निर्मल में ईर्ष्या की भावना को लक्ष्य करता है तो वह अपने पेशे का परित्याग कर देता है और अपनी प्रेयसी को पा कर उसके साथ कहीं चल देता है। पर्दा अन्तिम बार गिरता है। 'बाह्मन की बेटी' और 'शेष प्रश्न' दोहरे कथानकों वाले उपन्यास हैं। प्रथम में अरुण और संध्या मुख्य कथा के केन्द्र हैं। गयंद के प्रसङ्ग को जो अपने में पूर्ण है, उपकथा का रूप दिया गया है। इसे गोलक के चरित्र पर व्यंग्य कसने के लिए गढ़ा गया है जो देहाती समाज का चौधरी है और उन निष्पाप प्रेमियों के सर्वथा विपरीत है जिनका जीवन उस जैसे आचार-विचार के व्यक्तियों द्वारा नष्ट हो जाता है। 'शेष-प्रश्न' का कथानक अधिक उलझा हुआ है। कमल-शिवनाथ का विवाह और अजित-मनोरमा का सम्भावित विवाह दो मुख्य प्रसङ्ग है जिन्हें उपन्यास में चित्रित किया गया है। प्रणय की राह पकड़ कर ये युगल परस्पर बदल दिए जाते हैं। आशु बाबू उनके मेल की कड़ी हैं। शिवनाथ और मनोरमा अन्त में परिणय-सूत्र में बँध जाते हैं। कमल एकाकी ही बनी रहती है।

'ग्रामीण समाज' और 'श्रीकान्त' वस्तु-विधान की दृष्टि से अद्वितीय हैं। प्रथम उपन्यास में रमा व रमेश और द्वितीय में श्रीकान्त व राजलक्ष्मी समस्त गौण पात्रों तथा प्रसंगों को अपने गिर्द समेट लेते हैं। श्रीकान्त उपन्यास का केन्द्र है। अन्य सभी पात्र एक-दूसरे से

कदाचित् ही सम्बन्धित रहे हों; ऐसा केवल प्रधान पात्रों के द्वारा ही होता है। नायक-नायिका का प्रेम कथानक के संगठन को बनाए रखता है। श्रीकान्त घुमक्कड़ है। वह प्रेम के क्षेत्र में अपने विविध अनुभवों का स्वयं वर्णन करता है। उपन्यास के प्रथम तथा द्वितीय भाग में उसके भ्रमणों व यात्राओं का वर्णन है, तृतीय में प्रेम का विकास और चतुर्थ में उसका उत्कर्ष दिखाया गया है। शरत् की कुशलता विभिन्न कथाओं के संगठन में लक्षित होती है जो एक-दूसरे से स्वाभाविक रूप से गुँथी हुई हैं। सभी कथाएँ लेखक की ओर से किए गए किसी भी सचेत प्रयत्न को प्रकट किए बिना सहज रूप में आगे बढ़ती हैं। यद्यपि शरत् अपने वस्तु-विधान के मनोनीत रूप को दुहराने में कभी नहीं अघाते, फिर भी उन पर एक जड़ व नीरस रचना करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता। मूल ढाँचे में उन्होंने जो थोड़ा-थोड़ा अंतर ला दिया है, वह उसमें नवीनता ला देता है। प्रत्येक उपन्यासकार चाहे वह कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो अपने विषय को दुहराता ही है और अपने मौलिक जीवन-दर्शन की आवृत्ति करता ही रहता है। शरच्चन्द्र मध्यवर्गीय जीवन के अपने मूल अनुभवों को विभिन्न सामाजिक वातावरणों व परिस्थितियों में चित्रित करने का प्रयास करते हैं। मूल विषय में थोड़े-थोड़े अन्तर की उद्भावना आधुनिक भारतीय साहित्य के इस महानतम कथा-लेखक की शैली को निर्धारित और कला को निश्चित करती है।

छठा अध्याय

विशेषताएँ

मूल विषय

विधवा-जीवन की पीड़ा एवं विषाद शरच्चन्द्र के उपन्यासों व कहानियों का मूल विषय है। इसे वह अपनी रचनाओं में दुहराते रहते हैं। कट्टरपंथी हिन्दू समाज में विवाह को तलाक अथवा पति-मरण किसी भी तरह से अविच्छेद्य माना जाता है। इसी से विधवा के विवाह को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, चाहे वह कुमारी ही क्यों न हो जिसका पति उसके बचपन में ही चल बसा हो। परम्परागत मान्यता तो यह है कि जैसे नारी का जन्म व मरण केवल एक बार होता है, उसी तरह उसका विवाह भी एक ही बार हो सकता है और विधवा को आत्म-त्यागमय जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे दाम्पत्य प्रेम का कोई अधिकार नहीं है, उसे तो चिर-ब्रह्मचारिणी बन कर रहना है। वह अपनी सहज वृत्तियों के वशीभूत नहीं हो सकती और अपनी वात्सल्य-भावना की पूर्ति कभी नहीं कर सकती जब तक कि वह सन्मार्ग से विचलित न हो जाए जिससे उसे समाज की यंत्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं।

शरच्चन्द्र ही ऐसे लेखक नहीं हैं जिन्होंने अपनी कृतियों में विधवा-जीवन की सामाजिक यंत्रणाओं को समाविष्ट किया है। एक कुलीन विधवा की यातनाओं को प्रायः सभी भारतीय लेखकों ने वाणी दी है।

बंकिमचंद्र, रवीन्द्र, प्रेमचंद, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी इत्यादि ने नवयुवती विधवा की करुण अवस्था का चित्रण किया है जो अनेक सामाजिक रूढ़ियों से घिरी हुई प्रेम की केन्द्र बनती है। वह भारत के मध्यवर्गीय जीवन की गम्भीरतम समस्या की जड़ है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि बंकिम के दो उपन्यासों में जिनमें काम-भावना की वास्तविक उलझनें विद्यमान हैं, नवयुवती विधवा ही प्रधान पात्र है। 'विषवृक्ष' में जो स्पष्ट रूप से एक सोद्देश्य उपन्यास है, मूल समस्या विधवा-विवाह-सम्बन्धी है। एक अन्य उपन्यास में रोहिणी एक नवयुवती विधवा है जो एक युवक के प्रति आकृष्ट होती है और वह उससे नियम-विरुद्ध प्रेम करने लगता है। यह समस्त नैतिक मान्यताओं तथा सामाजिक नियमों के विरुद्ध है। अतः दोनों को सामाजिक नियम का खण्डन करने के अपराध में एक भारी मूल्य देना पड़ता है। रोहिणी के चरित्र की प्रधान विशेषता उसकी प्रेम की अतृप्त कामना है। वह जीवन के सौंदर्य का भोग नहीं कर पायी। वह पिंजड़े में बन्द कर दी गई है। उसे दूसरों के सुख पर ईर्ष्या होती है और अपने निज के जीवन से वह इतनी ऊब उठती है कि मृत्यु की कामना करती है, लेकिन उसमें मरने का साहस नहीं है। रवीन्द्र के 'चार अध्याय' में विनोदिनी एक और नवयुवती विधवा है जिसका अतृप्त प्रेम उपन्यास का आधार है। यद्यपि वह सहज ही कहानी की सबसे प्रभावपूर्ण पात्र है, फिर भी वह आत्म-त्यागमय जीवन के वशीभूत हो जाती और अपनी कामनाओं को एक प्रकार के आदर्श प्रेम में परिणत कर देती है। यह रूपान्तर कृत्रिम तो लगता ही है, किन्तु मध्यवर्गीय समाज-व्यवस्था में इस संघर्ष से मुक्त होने का और कोई मार्ग नहीं है।

शरत् नवयुवती विधवा के चरित्र को अपनी रचनाओं में चित्रित ही नहीं करते, वरन् उसे इतना अधिक दुहराते रहते हैं कि यह निश्चय ही उनकी कला का मूल स्वर जान पड़ता है। राजलक्ष्मी, अन्नदा दीदी, कमल, सावित्री, किरण, रमा, कमललता, मृणाल, माधवी तो उनमें से कुछ ही विधवाएँ हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी युवती तथा वृद्धा विधवाएँ शरत् की कहानियों में गौण रूप में आती हैं। इस प्रकार विधवा उनकी कृतियों की केन्द्र और उनके जीवन के मौलिक अनुभव की साकार रूप है। राजलक्ष्मी सर्वत्र मिल जाती है। विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल किए गए कुछेक परिवर्तनों के बावजूद वही प्रधान चरित्र है जिसे स्त्री-पात्रों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। माधवी, अन्नदा-दीदी, रमा और सावित्री विशुद्ध परम्परा का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे सतीत्व एवं पवित्रता के पुरातन आदर्श की साकार रूप हैं। अतीत उनमें इतना गहरा उतरा हुआ है कि वे बिना किसी विरोध अथवा विद्रोह के अपनी अवस्था में संतोष मान लेती हैं। वे उस विधवा की भावनाओं को मुखरित करती हैं जो युग-युगान्तर से सामाजिक अन्याय-अत्याचार की शिकार रही है। इसके विपरीत किरण और कमल स्वतंत्र विचारों वाली विधवाएँ हैं जो जीवन के परम्परागत मूल्यों पर प्रहार करती हैं। अपने कुशल तर्क-वितर्क और रूढ़ि-मुक्त आचरण से वे जीवन के प्राचीन मूल्यों के प्रति विद्रोह की भावना प्रकट करती हैं। वे अपने प्रेम तथा विवाह के अधिकार को साहसपूर्वक-व्यक्त करती हैं। कमल ने दो विवाह किए हैं; किरण एक युवक के साथ भाग जाती है। वह एक डॉक्टर और एक विवाहित पुरुष की भावनाओं के साथ भी खिलवाड़ कर चुकी है। वह प्रेम तथा कर्त्तव्य, हृदय की प्रेरणा और समाज के आग्रह के बीच

डावाँडोल है। शरत् ने उसकी मानसिक गतिविधि के भीतर गूढ़ व सूक्ष्म अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है और उसके जीवन के संघर्ष का विशद चित्रण किया है। राजलक्ष्मी का चरित्र-चित्रण उनके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण अनुभव है और वह उसके चरित्र को विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों तथा वातावरणों में खड़ा करके इस अनुभव को साकार करने से नहीं चूकते।

प्रेम का चित्रण

शरत् के सभी उपन्यास प्रेम-कहानियाँ हैं। प्रेम ही वह प्रबल प्रेरणा है जो उनके पात्रों में चेतना का संचार करती है। वस्तुतः यह तो स्वभाविक ही है कि उनकी रचनाओं में प्रेम की प्रधानता हो। इस कठोर जगत में वह देखते हैं कि मानव सुख की कामना करता है और यह कल्पना करता है कि वह किसी न किसी रूप में प्रेम के द्वारा ही उस सुख को पा सकेगा। यह प्रेम मनुष्य को चाहे निःस्वार्थ अथवा स्वार्थी, क्षमाशील अथवा प्रतिहिंसापूर्ण बना दे, वह चाहे विद्रोह करे या झुक जाए, लेकिन उसका लक्ष्य सदैव एक ही होता है। प्रेम द्वारा सम्भावित सुख उसके जीवन का मुख्य आदर्श है। वह यह नहीं जानता कि उसका प्रयास असफल सिद्ध होगा, क्योंकि मध्यवर्गीय समाज में प्रेम की विफलता निश्चित है। अपने सामाजिक वर्ग से बहिष्कृत व्यक्ति एक भ्रम की सृष्टि कर के उसका अनुसरण करता है और अंत में निराश हो जाता है। इससे उसकी प्रेम व सुख की प्यास और भी तीव्र हो उठती है। सामंतीय समाज-व्यवस्था में पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहिन के बीच जो कोमल संबंध विद्यमान थे, उन सब का स्थान नर-नारी के बीच

नए मध्यवर्गीय संबंध ले रहे हैं। नई सभ्यता ने व्यक्तिवाद को प्रधानता दे कर उत्कट तथा रोमाण्टिक प्रेम के मूल्य पर बल दिया है। रोमाण्टिक एवं कामुक प्रेम का उद्भव मध्यवर्गीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। क्रिस्टोफर कॉडवेल के मतानुसार मध्यवर्गीय प्रेम जब तक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का साधन बना रहता है तब तक रचनात्मक व प्रगतिशील कार्य करता है। इस में उन परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह समाविष्ट रहता है जिन्होंने पुरुष को सामंतीय शासक का, पत्नी को पति का, पुत्र को पिता का, बहिन को भाई का गुलाम बना रखा था। व्यक्तित्व के आग्रह ने प्रेम को अधिक तीव्र एवं सशुद्ध बना दिया है। यह सच है कि प्रेम की परिणति कदाचित् ही विवाह में हुई हो, फिर भी यह शरत् के उपन्यासों को कोमल व मधुर भावनाओं से सम्पन्न कर देता है। वह अपनी कहानियों में प्रेम का चित्रण कर के अद्भुत सृजनात्मक शक्ति का परिचय देते हैं।

नारी का जीवन मुख्य रूप से प्रेम पर टिका हुआ है; यही उसका सर्वस्व है। इसमें मनुष्य के जीवन को रूपान्तरित करने की शक्ति है। श्रीकान्त अपनी प्रेयसी की उपस्थिति में सर्वशक्तिमान बन जाता है। प्रेम की प्रबल शक्ति सतीश का रूपान्तर कर देती है। लम्पट जीवानंद को निःस्वार्थ प्रेम का एक स्पर्श पावन बना देता है। देवदास प्रेम से वंचित होने पर सुध-बुध खो बैठता है। सुरेन सुखपूर्वक विवाहित होने पर भी अपने प्रेम की पात्री को भूल नहीं पाता। सुरेश अपनी प्रेयसी अचला के सम्मुख स्फूर्ति का अनुभव करता है। शरत् के साहित्य में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। उनका विश्वास है कि सेवा एवं त्याग पर आधारित प्रेम में मानव-स्वभाव को रूपान्तरित करने

की शक्ति है। यह जीवन की अमूल्य सम्पदा है। शरत् ने प्रेम के विविध रूपों को जो महत्त्व तथा विस्तार दिया है उससे इस मत की पुष्टि होती है कि उन्हें प्रेम की आन्तरिक शक्ति का गहरा अनुभव है। वह प्रेम से इतने सराबोर हैं कि सदैव उसी का राग अलापते हैं। प्रेम चाहे आध्यात्मिक शक्ति को लिए हो, फिर भी उसकी अभिव्यक्ति सदैव मानवीय एवं मूर्त होती है। यह मध्यवर्गीय समाज के साधारण नर-नारियों के जीवन में फलीभूत होता है। यह बड़े कौतुक की बात है कि शरत् के कथा-साहित्य की प्रायः सभी नारियाँ अपने प्रेम-पात्र को या तो उसकी उदर-पूर्ति करके या फिर रुग्णावस्था में उसकी सुश्रूषा करके पाती हैं। षोड़शी उस ज़मीदार को रोग-मुक्त करके उसे मंत्र-मुग्ध कर देती है। राजलक्ष्मी श्रीकान्त की बीमारी में उसकी परिचर्या करके उसे पा लेती है। अचला को अपने पति को स्वास्थ्य तथा जीवन की प्राप्ति करा कर लगता है जैसे वह उसे फिर से मिल गई है। सावित्री भी सतीश की रुग्णावस्था में उसकी सेवा-सुश्रूषा करती है। यह एक सामान्य साधन है जिसे अनेक अन्य कहानियों में अपनाया गया है। ये सभी नारियाँ अपने प्रेम-पात्र को पाने के लिए एक और उपाय का प्रयोग करती हैं। विजया, माधवी, सावित्री, राजलक्ष्मी, किरण, कमल, भारती इत्यादि अपने प्रेम-पात्र की उदर-पूर्ति के द्वारा उस पर विजय पाती हैं। ऐसा वह इतनी कुशलता और इतनी सुकुमार देखभाल से करती हैं कि वे उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार के वशीभूत हो जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इन सभी पुरुषों को खाने-पीने में अत्यधिक रुचि है। यह उनके चरित्र का मर्मस्थल है। माधवी, सावित्री, राजलक्ष्मी और विजया मुख्यतः माताएँ हैं जो अपने बच्चों से स्नेह करती हैं। सुरेन,

सतीश, श्रीकान्त और नरेन्द्र भी इनके सम्मुख बच्चों का-सा व्यवहार करते हैं। इन नारियों की वात्सल्य-भावना ही इन्हें प्रेम का बोड़ा उठाने के लिए प्रेरित करती है। अचला, भारती, कमल और किरण भी प्रेम का प्रारम्भ करती हैं, लेकिन उनके ऐसा करने का एक और ही कारण है। ऐसा करने के लिए वे सामाजिक रूप से स्वतंत्र हैं। वात्सल्य-भावनायुक्त नारियाँ पुरुषों की सुकुमार देख-भाल के रूप में यह खेल आरम्भ करती हैं। शरत् ने प्रेम-सम्बन्धी धारणा तथा चित्रण में एक अन्य साधन को अपनाया है। बालपन के प्रेम को ही उनके उपन्यासों और कहानियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। देवदास और पार्वती इस शैशव के प्रेम के प्रतीक हैं। 'स्वामी' में सौदामिनी और नरेन्द्र के बीच बचपन में ही गहरी घनिष्ठता बढ़ती है। 'ग्रामीण समाज' में रमा और रमेश बाल्यावस्था में परस्पर स्नेह करते हैं। काशीनाथ अपनी किशोरावस्था के प्रेम की पात्री से विवाह न कर सका। बालपन के प्रेम का भोलापन और गहराई उस वेदना को तीव्र बना देती है जो प्रेमियों के मन पर छाई रहती है। समाज का निर्मम हाथ जो निर्दोष प्रेमियों के न्यायोचित सुख को मसल डालता है अपने नग्न रूप में प्रकट होता है। शरत् बालपन के प्रेम की विफलता पर टीका-टिप्पणी नहीं करते। जात-पात, धन-सम्पत्ति, सामाजिक स्थिति और समाज की अन्य निर्मम रूढ़ियों द्वारा विध्वस्त इस निष्पाप प्रेम की कहानी कहते समय वह असह वेदना से अपने होंठों को सिकोड़-भर लेते हैं। ऐसा लगता है कि उनका मन कड़ा हो गया है। एक अन्य साधन जिसे तरुण युगल के बीच प्रेम अंकुरित करने के लिए अपनाया गया है वह है दोनों में से किसी के द्वारा सम्पत्ति अथवा

नकद के रूप में दी गई सहायता से उत्पन्न कृतज्ञता की गहरी भावना। यह अनिवार्य है कि मध्यवर्गीय समाज में सामाजिक सम्बन्ध यहाँ तक कि प्रेम भी धन-सम्बन्धी मान्यताओं द्वारा शासित हो, क्योंकि धन ही वह श्रेष्ठतम उपहार है जिसे एक पुरुष अपनी प्रेयसी के हृदय पर विजय पाने के लिए दे सकता है। 'परिणीता' के ललिता-शेखर, 'दत्ता' के विजया-नरेन्द्र, 'पथ-निर्देश' के हेम-गुणेन्द्र, 'अरक्षणीया' के ज्ञानदा-अतुल, 'गृहदाह' के महिम-अचला, 'श्रीकान्त' के राजलक्ष्मी-श्रीकान्त और अन्य कई प्रेमी युगल अपने प्रेम के विकास में धन द्वारा किए गए महत्त्वपूर्ण कार्य को मुखरित करते हैं।

प्रेम के चित्रण में शरत् ने संयम से काम लिया है। उनकी रचनाओं में अश्लीलता का कहीं आभास तक नहीं मिलता। नर-नारी के हृदय का उद्घाटन कल्पना-शक्ति तथा आन्तरिक प्रेरणा द्वारा किया गया है। वह मन के मेल अथवा आत्मा की एकता को महत्त्व देते हैं। विषय-सुख उन्हें आकर्षित नहीं करते; वह तो निःस्वार्थ प्रेम के पावन प्रभाव पर बराबर बल देते हैं। सुरेश और किरण जो इस प्रेम के अपवाद हैं, उनके उपन्यासों के सबसे अशान्त पात्र हैं। प्रेम के चित्रण में असाधारण संयम उनके कथा-साहित्य की अद्वितीय विशेषता है जो भारतीय मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र है।

चिंतन व कला

किसी उपन्यास को कला-कृति उस सीमा तक ही कहा जा सकता है जिस सीमा तक वह हमें एक ऐसे लोक में पहुँचा देता है जो कुछ बातों में उस संसार से मिलता-जुलता है जिसमें हम रहते हैं, लेकिन

अपनी एक विशिष्टता को लिए रहता है। इस लोक का स्वरूप इस बात पर निर्भर रहता है कि यह कलाकार के अनुभव के आधार पर उसकी सृजनात्मक शक्ति की उपज होता है। उसकी कल्पना वास्तविकता को ग्रहण करके उसका एक नवीन रूप पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करती है। अतः कलाकार की कुशलता उसकी रचना के उस अंश में लक्षित होती है जिसमें उसके अनुभव के उन पक्षों का वर्णन होता है जो उसकी कल्पना को समृद्ध बनाते और उसकी सृजनात्मक शक्ति को उभाड़ते हैं। जब तक वह अपने अनुभव की परिधि के भीतर रहता है, उसकी रचना सृजनात्मक जीवन से अनुप्राणित रहती है। अतः कलाकार के जीवन-दर्शन को जानना हमारा प्रथम कर्तव्य है। शरच्चन्द्र के अनुभव का क्षेत्र उस मध्यवर्गीय समाज की परिस्थितियों तक सीमित है जिसमें उनका जन्म हुआ था। वह एक ऐसी सभ्यता व संस्कृति से सम्बन्ध रखते थे जो ह्रास की ओर उन्मुख हो रही थी। इस बात को ऐसे भी कहा जा सकता है कि वह दो संस्कृतियों के संक्रांतिकाल से सम्बन्ध रखते थे। उनकी रचनाओं से समकालीन समाज का संघर्ष प्रतिबिम्बित होता है। उनमें मध्यवर्गीय संस्कृति का एक आधारभूत एवं मौलिक स्वरूप लक्षित होता है; और कथा-साहित्य तथा संस्कृति में घनिष्ठ संबंध है। संस्कृति के अंतर्गत लोगों के आचार-विचार आते हैं और कथाकार जीवन का एक स्वरूप खड़ा करने के लिए इन आचार-विचारों को कच्ची सामग्री के रूप में प्रयुक्त करता है। फिल्म के अतिरिक्त कोई भी कला, यहाँ तक कि नाटक अथवा कविता भी प्रत्यक्ष रूप में ऐसा नहीं कर पाती। उपन्यास मध्यवर्गीय समाज का श्रेष्ठतम कला-रूप है और उपन्यासकार इस समाज के मूल्यों को अत्यन्त ईमानदारी के साथ

चित्रित करता है।

शरच्चन्द्र भारत के मध्यवर्गीय समाज के महानतम कलाकार हैं। पिछले अध्यायों में उनकी चिन्तनधारा की गति और उनकी कला की विशेषताओं को प्रकट करने के लिए उनके उपन्यासों तथा कहानियों का विश्लेषण किया जा चुका है। यह स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि किस तरह उनकी रचनाएँ समस्त बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ-साथ उस संस्कृति का भी प्रचुर चित्रण करती हैं जिसकी वे उपज हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों व कहानियों में जिस लोक की सृष्टि करने का प्रयास किया है उसके अंतर्गत निष्प्राण ज़मीदार-वर्ग और एक नवीन समाज-व्यवस्था के लिए छटपटा रहा मध्यवर्ग आता है। शरत् ने इस संसार को पहिचाना और इससे प्रेम भी किया है, क्योंकि इससे स्नेह किए बिना उन्हें इसकी अंतरंग जानकारी नहीं हो सकती थी और न ही वह इसकी सृष्टि कर सकते थे। किसी वस्तु का तब तक पूर्ण चित्रण नहीं किया जा सकता जब तक कि कलाकार उससे स्नेह न करता हो। प्रेम मन को उस वस्तु को जिसे वह जानना चाहता है जानने तथा उसमें प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित करता है और बदले में उस वस्तु को अपने भीतर समो लेने की क्षमता रखता है। यह प्रेम शरत् के चिंतन की विशेषता है। उनके अनुभव का आधार अनासक्ति नहीं, आसक्ति है। उनकी कला की सृष्टि अथवा अनुभव के चित्रण में यह क्रम बदल जाता है। अपने अनुभव को कला का रूप देते समय वह निस्संगता से काम लेते हैं। शरत् अपने पात्रों के जीवन में हस्तक्षेप नहीं करते जो उनसे अछूते रह कर विकसित होते हैं, लेकिन उनका ज्ञान एवं विवेक इन

पात्रों के जीवन में पूरी तरह घुलमिल जाने का ही परिणाम है। उनके सम्बन्ध में लिखते समय वह क्षणिक निस्संगता का भाव धारण कर लेते हैं।

उनके चरित्र-चित्रण का क्षेत्र मध्यवर्गीय समाज तक सीमित है। राजलक्ष्मी और श्रीकान्त उनकी कला की मूलभूत सृष्टियाँ हैं। उनके अनुभवों को वह अपनी रचनाओं में बहुधा प्रतिबिम्बित करते हैं। प्रत्येक उपन्यासकार के सामने कला और सामाजिक वातावरण में समन्वय स्थापित करने की समस्या रहती है। उसके सम्मुख अनेक मार्ग खुले रहते हैं। वह चाहे अपने वातावरण का विरोध करे अथवा मानसिक एकान्त में रहे या फिर अपनी कला को सस्ते प्रचार के गर्त में गिर जाने देता है। शरत् को भी इस स्थिति का सामना करना पड़ा है। उन्हें आन्तरिक अलगाव में विश्वास नहीं है जिसका अर्थ है सम-कालीन स्थिति से पलायन। वह वातावरण का विरोध करते हैं, लेकिन इस उत्साह में कभी-कभी अपनी कला को प्रभावहीन प्रचार के गढ़े में गिर जाने देते हैं। अपने प्रथम कोटि के उपन्यासों में उन्होंने ऐसे पात्रों की सृष्टि की है जो मध्यवर्गीय जीवन का उसके समस्त दुःख एवं विषाद सहित प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरणार्थ, सुरेन और माधवी निराशा एवं विफलता के पंथ को मुखरित करते हैं। यह उनके आरम्भिक उपन्यासों व कहानियों की मुख्य विशेषता है। जीवन की निराशा मध्य-वर्गीय कलाकार का मौलिक दृष्टिकोण है। साथ ही शरत् समाज को आन्तरिक ह्रास से मरने देना नहीं चाहते। वह उसका कायाकल्प करना चाहते हैं। अतः वह अपनी कला में सामाजिक उद्देश्य अथवा समालोचना की अवतारणा करते हैं। वह उन मूल्यों में अपनी आस्था को पुष्ट करते

हैं जो काल पर विजय पा चुके हैं और सभ्यता व संस्कृति में विविध परिवर्तन हो जाने के बाद भी जीवित रहे हैं। उन्होंने यह दिखाया है कि किस तरह आधुनिक समाज मनुष्य की सद्भावनाओं को कुचल डालता है। मनुष्य में अभी प्रेम एवं त्याग की क्षमता है। उसने अपने चरित्र की महत्ता तथा मन की श्रेष्ठता को खो नहीं दिया है। उसमें अब भी जीवन की परिस्थितियों को बदल डालने की शक्ति है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा नैतिक स्वाधीनता से सम्पन्न मानव के प्रति शरत् की सच्ची आस्था है। मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्णतः ह्रास अथवा मरण नहीं हो गया। शरत् उस पात्र के मूल स्वरूप को कायम रखते हैं जो एक विरोधी समाज से घिरा हुआ है। उनके साहित्य का नायक एक विरोधी वातावरण के मध्य में एकाकी जीव है। शरत् को ऐसे ही पात्रों से गहरा मोह है। यह उनके क्षेत्र की सीमाओं का परिचय देता है और उनकी कला की परिधि को निश्चित करता है। यह उनकी प्रतिभा की मूल विशेषता है।

शरच्चन्द्र ने परम्परा को बंकिम से ग्रहण किया है जो वस्तु-विधान में कुशल माने जाते थे। वह परम्परागत उपन्यासकारों के कदाचित् अन्तिम प्रतिनिधि हैं जिन्होंने उपन्यास में कथानक एवं संघर्ष को महत्त्व दिया। कहानी आदिकाल से मनुष्य को प्रभावित करती आई है। कथानक कहानी के बौद्धिक रस को बढ़ा देता है। भविष्य के उपन्यास का कथानक एवं संघर्ष की परम्परागत परिपाटी को अपना लेना निश्चित है, क्योंकि 'चेतना-प्रवाह' और 'प्राकृतिक प्रयोगों' के परे अव्यवस्था ही अव्यवस्था है। इसमें संदेह नहीं कि प्रयोगात्मक शैलियों ने हमारे मानव-संबंधी ज्ञान को गहरा एवं समृद्ध बना दिया है, परन्तु

वे व्यक्ति को परे हटा कर कहानी पर छा जाती हैं। शरत् ने कथानक एवं संघर्ष की परम्परागत शैली को अपनाने के साथ-साथ मानव के सम्बन्ध में अपने सहज ज्ञान का भी प्रयोग किया है। उनका जीवन-दर्शन इस लिए अत्यन्त प्रभावपूर्ण है कि उनकी कला प्राचीन साँचे में ढली हुई है। वह एक उत्कट सृजनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न हैं, किंतु उनके साहित्य की अन्तिम कोटि में यह प्रतिभा आत्म-चेतना एवं परिष्कार के प्रत्येक चरण के साथ सिकुड़ती हुई प्रतीत होती है। वह अपनी कला की अन्तिम कोटि में भी अपनी सृजनात्मक प्रतिभा को सर्वथा खो नहीं देते, वरन् मध्यवर्गीय समाज के दुःख एवं विषाद के प्रति हार्दिक सहानुभूति के बल पर उसे बनाए रखते हैं।

मेरा कार्य लगभग समाप्त हो चुका है। शरत् के दृष्टिकोण की व्याख्या करने, उनकी कला के गुण-दोषों को परखने, सामाजिक वातावरण के साथ उनकी कला के सम्बन्ध का पता लगाने, उनकी चरित्र-चित्रण और प्रेम संबंधी धारणा की विवेचना करने, वस्तु-विधान का विश्लेषण करने और उनकी कहानी-कला पर विचार करने का एक प्रयास किया गया है। ऐसा होते हुए भी यदि अनेक पाठकों तथा प्रशंसकों को वह जिस तरह मोह लेते हैं उसकी व्याख्या करने का कोई प्रयास नहीं किया गया तो यह कार्य अधूरा ही रहेगा। वे उनकी कला की सराहना-भर नहीं करते, वरन् एक विशिष्ट महत्ता, विनम्रता, शोभा और एक विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न लेखक की सनक से युक्त उस कलाकार से प्रेम करते हैं। शरत् के कोई बाल-बच्चा नहीं था, लेकिन उन्हें पालतू जानवरों—पक्षियों, गिलहरियों, कुत्तों आदि को रखने का बड़ा चाव था। वह अपने हुक्के के बिना बिलकुल नहीं रह सकते थे, यहाँ तक

कि उनके लिखते समय भी यह काम जारी रहता। यूसफ मेहरअली ने बताया है कि वह चाय के कितने शौकीन थे। वह दिन में कई बार एक साथ कई प्याले चाय के पी जाते। वह होमियोपेथी और रसायन-शास्त्र का भी प्रयोग करते और कई बार ज़रूरतमंद ग्रामीण लोगों में छोटी छोटी गोलियाँ भी मुफ़्त में बाँट दिया करते थे। वह सामान्यतः कीमती काग़ज पर लिखते। उत्तम लेखन-सामग्री को वह कला का उपहार मानते थे। वह सदैव सुन्दर नोक की निब वाले एक बड़े-से फाउण्टेन-पेन का प्रयोग करते और बड़ी सुडौल एवं ललित लिखावट में लिखते थे। इन सभी विशिष्टताओं को लिए वह एक स्नेह योग्य व्यक्ति थे। उनका कोमल हृदय मानवीय दुःख एवं विषाद को देख कर मार्मिक सहानुभूति से भर उठता था। उनके प्रेम तथा करुणा की ज्योति मध्यवर्गीय समाज के अंधकार में प्रकाश की एक-मात्र रेखा बन कर जगमगाती है। भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी उनका स्थान सुरक्षित है, क्योंकि उन्होंने एक महान संघर्ष की अवस्था में भारत के मध्यवर्गीय समाज का यथार्थ तथा सशक्त चित्रण किया है। उन्होंने अनेक अमर चरित्रों की सृष्टि करके जो वर्तमान मध्यवर्गीय संस्कृति तथा विगत सामंतीय संस्कृति के प्रतीक हैं जीवन की व्याख्या की है।

———

पुस्तक-सूची

(क) शरच्चन्द्र कृत पुस्तकें :—

	बंगाली	हिन्दी
१	बड़ी दीदी	बड़ी दीदी
२	पंडित मोशाय	पंडितजी
३	अरक्षणीया	अरक्षणीया
४	बैकुंठेर विल	बैकुंठ का दानपत्र
५	मेजदीदी	मझली बहिन
६	चंद्रनाथ	चंद्रनाथ
७	परिणीता	परिणीता
८	देबदास	देवदास
९	श्रीकान्त	श्रीकान्त
१०	काशीनाथ	काशीनाथ
११	निष्कृति	निष्कृति
१२	चरित्रहीन	चरित्रहीन
१३	स्वामी	स्वामी
१४	दत्ता	दत्ता
१५	गृहदाह	गृहदाह
१६	पल्ली समाज	ग्रामीण समाज

	बंगाली	हिन्दी
१७	बामुनेर मेये	बाह्मन की बेटी
१८	देना पावना	लेन-देन
१९	नब-बिधान	नव-विधान
२०	बिराज बहू	विराज बहू
२१	बिंदोर छेले	बिन्दो का लल्ला
२२	छबि	तस्वीर
२३	हरिलक्ष्मी	हरिलक्ष्मी
२४	शेष प्रश्न	शेष प्रश्न
२५	अनुराधा	अनुराधा
२६	पथेर दाबी	पथ के दावेदार
२७	बिप्रदास	विप्रदास
२८	शुभदा	शुभदा
२९	पारस	पारस
३०	हरिचरण	हरिचरण
३१	महेश	महेश
३२	बोझ	बोझ
३३	दर्पचूर्ण	दर्पचूर्ण
३४		अंधकार में आलोक
३५		प्रकाश और छाया
३६	रामेर सुमति	सुमति
३७	मंदिर	मंदिर
३८		अभागिनी का स्वर्ग

(ख) शरत् की निम्नलिखित पुस्तकें नाटक में रूपान्तरित की गई हैं :—

(१) रमा (२) बिजया (३) बिराजबहू (४) बिंदोर छेले (५) मेज दीदी (६) काशीनाथ (७) स्वामी (८) हरिलक्ष्मी (९) अनुराधा।

(ग) निम्नलिखित उपन्यासों की फिल्में बन चुकी हैं :—

(१) देना-पावना या लेन-देन या पुजारिन।

(२) गृहदाह या मंज़िल।

(३) देवदास।

(४) काशीनाथ।

(५) अरक्षणीया या इनकार।

(६) बड़ी दीदी।

(७) परिणीता।

(घ) आलोचना (अंग्रेज़ी)

(१) *Saratchandra Chatterjee* by Humayun Kabir (Padma Publication, Bombay)

(२) *Life and Novels of Bankim Chandra* by Dr. J. K. Das Gupta (Calcutta University).

(३) *Novel and the People* by Ralph Fox (Lawrence and Wisharat)

(४) *The Novel and the Modern World* by David Daiches. (University of Chicago Press)

(५) *The Twentieth Century Novel* by J. W. Beach (Appletou Century)

(६) *The Novel and Society* by N. Elizabeth Monroe (University of North Corolina Press)

(७) *Sarat Chandra Chatterjee : Man and Artist* by Sengupta (Saraswati Press, Calcutta)